९२

महादेव माहात्म्यम्

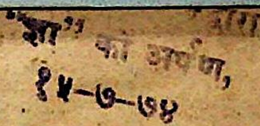
पं० मदनमोहन मालवीयेन

संकलितम् ।

1934

प्रथमावृत्तिः १०००

मू० ।।।)



महादेव माहात्म्यम् ।

भगवता श्रीकृष्णेन कथितम् ।

महाभारत—अनुशासनपर्व—अध्याय १४-१८

पं० मदनमोहन मालवीयेन संकलितम् ।

सम्वत् १९९१

प्रथमावृत्तिः १०००

मू० ।।)

एकमेवाद्वितीयम्

सृष्टि स्थित्यन्तकरणीं ब्रह्म विष्णु शिवाभिधाम् ।
स संज्ञां याति भगवान् एक एव जनार्दनः ॥

—विष्णुपुराणे ।

परमात्मा एक है इस पर—

विष्णु पुराण में आया है कि जगत् की रचना, पालन और संहार करने के कारण एकही परमात्मा ब्रह्मा, विष्णु और शिव नाम को प्राप्त करता है ।

नारायणोऽक्षरोऽनन्तः सर्वव्यापी निरञ्जनः ।
तेनेदमखिलं व्याप्तं जगत्स्थावर जङ्गमम् ॥
तमादिदेवमजरं केचिदाहुः शिवाभिधम् ।
केचिद्विष्णुं सदा सत्यं ब्रह्माणं केचिदुच्यते ॥

—बृहन्नारदीये ।

बृहन्नारद का वचन है कि, नारायण अविनाशी है, अनन्त है, चराचर रूप से विद्यमान समस्त विश्व में रहनेवाला है और निरञ्जन है; उसी परमात्मा से यह सारा संसार व्याप्त है । उस आदि देव, एकही परमात्मा को कोई लोग शिव नाम से कहते हैं, कोई विष्णु के नाम से पुकारते हैं और कोई ब्रह्मा नाम से पुकारते हैं ।

त्रिधा भिन्नोह्यहं विष्णो ब्रह्म विष्णु हराख्यया ।
सर्ग रक्षालयगुणैः निष्कलोऽयं सदा हरे ॥
अहं भवानयं चैव रुद्रोऽयं यो भविष्यति ।
एकं रूपं न भेदोऽस्ति भेदे च बन्धनं भवेत् ॥

—शिवपुराणे ।

शिवपुराण में शिवजी कहते हैं—

हे विष्णो ! सृष्टि, स्थिति और लय के कारण में ब्रह्मा, विष्णु और हर इन तीन नामों से विभक्त हूँ । वस्तुतः यह परमात्मा निष्कल है ।

मैं आप और यह ब्रह्मा एवं भविष्य में होनेवाला रुद्र हम सब एकही स्वरूपवाले हैं, अर्थात् हम लोगों में तात्त्विक भेद कुछ भी नहीं है। यदि परमात्मा के बारे में भेद माना जाय तो बन्धन को छोड़कर मुक्ति कभी नहीं हो सकेगी।

अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम् ।
आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयं दृगविशेषणः ॥
आत्ममायां समाविश्य सोऽहं गुणमयीं द्विज ।
सृजन् रक्षन् हरन् विश्वं दध्रे संज्ञां क्रियोचिताम् ॥

—भागवते ।

भागवत का वचन है कि—

मैं (विष्णु भगवान्) ब्रह्मा औ शंकर ये सब संसार के परम कारण हैं। ज्ञानात्मक, निरुपाधिक आत्मा स्वयं साक्षीमात्र है; अर्थात् वस्तुतः साक्षीमात्र उस आत्मेश्वर में कर्त्तृत्वादि गुण आरोपित किये जाते हैं। वह परमात्मस्वरूप मैं सत्वादि गुणवाली अपनी माया का आश्रय करके सृष्टि, स्थिति और लयरूप कार्यों के हेतु कार्यानुकूल ब्रह्मादि नामों को धारण करता हूँ।

शिवो महेश्वरश्चैव रुद्रो विष्णुः पितामहः ।
संसार वैद्यः सर्वज्ञः परमात्मेति मुख्यतः ।
नामाष्टकमिदं नित्यं शिवस्य प्रतिपादकम् ॥

शिव, महेश्वर, रुद्र, विष्णु, पितामह (ब्रह्मा), संसारवैद्य (संसाररूप व्याधि के उपायरूप परमात्मा), सर्वज्ञ, और परमात्मा ये आठ नाम परमात्मारूप शिवजी के ही हैं। एवं ॐ नमो भगवते वासुदेवाय, ॐ नमो नारायणाय, ॐ नमः शिवाय, श्रीरामाय नमः, श्रीकृष्णाय नमः ये सब मंत्र एक ही परमात्मा की स्तुति करते हैं।

ॐ नमः शिवाय

महादेव माहात्म्यम् ।

भगवता श्रीकृष्णेन कथितम्

महाभारत—अनुशासनपर्व—अध्याय १४–१८ तः संगृहीतम् ।

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

युधिष्ठिर उवाच—

त्वयाऽऽपगेय नामानि श्रुतानीह जगत्पतेः ।
पितामहेशाय विभो नामान्याचक्ष्व शम्भवे ॥
बभ्रवे विश्वरूपाय महाभाग्यञ्च तत्वतः ।
सुरासुर गुरौ देवे शङ्करेऽव्यक्तयोनये ॥ २ ॥

भीष्म उवाच—

अशक्तोऽहं गुणान् वक्तुं महादेवस्य धीमतः ।
यो हि सर्वगतो देवो न च सर्वत्र दृश्यते ॥ ३ ॥
ब्रह्मविष्णुसुरेशानां स्रष्टा च प्रभुरेव च ।
ब्रह्मादयः पिशाचान्ता यं हि देवा उपासते ॥ ४ ॥

राजा युधिष्ठिर बोले—हे पितामह ! आपने जगत्पति महेश्वर के नामों को सुना है इसलिये इस समय उसी जगन्नियन्ता, अन्तर्यामी, विशाल विश्वरूप, महाभाग सुरासुरगुरु, जगत् की उत्पत्ति और लय के कारण, स्वयम्भू देव के नामों को यथार्थ रीति से वर्णन करिये ।

भीष्म बोले—मैं उस महाज्ञानी महादेव के गुणों का वर्णन करने में असमर्थ हूँ । वह देवेश्वर सर्वत्र व्यापक होते हुये भी सब जगह दिखाई नहीं देता । जो विराट्रूप ब्रह्मा सूत्रात्मारूप विष्णु तथा प्राज्ञरूप सुरेश का उत्पन्न करने वाला प्रभु है । ब्रह्मा आदि देवताओं से लेकर पिशाच पर्यन्त देवता लोग जिसकी उपासना करते हैं, पञ्चतन्मात्र महत् अहंकार

प्रकृतीनां परत्वेन पुरुषस्य च यः परः ।
चिन्त्यते यो योगविद्भिर्ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ५ ॥
अक्षरं परमं ब्रह्म असच्च सदसच्च यः ।
प्रकृतिं पुरुषञ्चैव क्षोभयित्वा स्वतेजसा ॥ ६ ॥
ब्रह्माणमसृजत्तस्माद्देवदेवः प्रजापतिः ।
को हि शक्तो गुणान्वक्तुं देवदेवस्य धीमतः ॥
गर्भजन्मजरायुक्तो मर्त्यो मृत्युसमन्वितः ॥ ७ ॥
को हि शक्तो भवं ज्ञातुं मद्विधः परमेश्वरम् ।
ऋते नारायणात् पुत्र शङ्ख चक्र गदा धरात् ॥ ८ ॥
एष विद्वान् गुण श्रेष्ठो विष्णुः परम दुर्जयः ।
दिव्यचक्षुर्महातेजा वीक्षते योग चक्षुषा ॥ ९ ॥
रुद्र भक्त्या तु कृष्णेन जगद्व्याप्तं महात्मना ।
तं प्रसाद्य तदा देवं वदर्य्यां किल भारत ॥ १० ॥
अर्थात् प्रियतरत्वञ्च सर्व लोकेषु वै तदा ।

अव्यक्त आदि प्रकृति से और पुरुष से भी परतररूप से योग के जानने वाले तत्वदर्शी ऋषि लोग जिसका ध्यान किया करते हैं। जो अपरिणामी परब्रह्म रज्जुसर्पवत् असत् भासमान होकर भी अनिर्वचनीय है जिसने अपने तेज के प्रभाव से माया और उसमें प्रतिविम्बित चैतन्य को प्राणिकर्मानुरोध से महत्तत्व से क्षुब्ध करते हुये निज सत्ता की स्फूर्ति से ब्रह्मा को उत्पन्न किया है जब कि उस देवों के देव से प्रजापति उत्पन्न हुये हैं तब गर्भ जन्म जरायुक्त मरण धर्म वाला कौन मनुष्य उस धीमान् देवदेवेश्वर महादेव के गुणों को वर्णन करने में समर्थ होगा।

हे युधिष्ठिर ! शंख चक्र गदाधारी नारायण के अतिरिक्त मेरे समान कोई मनुष्य उस परमेश्वर को नहीं जान सकता। गुणों में श्रेष्ठ परम दुर्जय दिव्यदृष्टिधारी, महातेजस्वी, विद्वान् विष्णु ही योगरूपी नेत्र के सहारे उसे देख सकते हैं।

हे भारत ! रुद्र की भक्ति से अर्थात् आकाशादि अष्टमूर्तियों के ध्यान से महात्मा कृष्ण ने समस्त जगत को व्याप्त किया। तब बदरिकाश्रम में इन्होंने उसी देव को प्रसन्न करके दिव्य दृष्टि महेश्वर के

प्राप्तवानेव राजेन्द्र सुवर्णाक्षान्महेश्वरात् ॥ ११ ॥

पूर्णं वर्ष सहस्रन्तु तप्तवानेष माधवः ।
प्रसाद्य वरदं देवं चराचर गुरुं शिवम् ॥ १२ ॥

युगे युगे तु कृष्णेन तोषितो वै महेश्वरः ।
भक्त्या परमया चैव प्रीतश्चैव महात्मनः ॥ १३ ॥

ऐश्वर्यं यादृशं तस्य जगद्योनेर्महात्मनः ।
तदयं दृष्टवान् साक्षात् पुत्रार्थे हरिरच्युतः ॥ १४ ॥

तस्मात्परतरञ्चैव नान्यं पश्यामि भारत ।
व्याख्यातुं देवदेवस्य शक्तो नामान्यशेषतः ॥ १५ ॥

एष शक्तो महाबाहुर्वक्तुं भगवतो गुणान् ।
विभूतिञ्चैव कार्त्स्न्येन सत्यां माहेश्वरीं नृप ॥ १६ ॥

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्त्वा तदा भीष्मो वासुदेवं महायशाः ।
भवमाहात्म्यसंयुक्तमिदमाह पितामहः ॥ १७ ॥

प्रभाव से उस समय सब लोकों के बीच भोग्य वस्तुओं से भी प्रियतर पदार्थ प्राप्त किया है। इसी कृष्ण ने पूरी रीति से एक हजार वर्षतक तपस्या की थी। चराचर को वर देने वाले शिव को प्रसन्न करके कृष्ण ने प्रत्येक युग में महेश्वर को संतुष्ट किया है और इस महात्मा की परम भक्ति से महादेव प्रसन्न हुये हैं।

जगत के उत्पत्तिस्थान महादेव का जैसा ऐश्वर्य है उसका इस अविनाशी हरि ने पुत्र के निमित्त साक्षात दर्शन किया है।

हे भारत! उससे पर मैं और किसी को भी नहीं देखता कि जो उस महादेव के नामों को अशेष रूप से कह सकता है। हे राजन्! महाबाहु कृष्ण ही उस भगवान् के गुणों तथा उस महेश्वर की सत्य विभूति का विस्तारपूर्वक वर्णन करने में समर्थ हैं। श्री वैशम्पायन मुनि बोले— तब बड़े यशस्वी भीष्मपितामह वासुदेव जी का इस प्रकार वर्णन करके शिवजीके माहात्म्य से संयुक्त वचन उनसे कहने लगे।

भीष्म उवाच—

सुरासुर गुरो देव विष्णो त्वं वक्तुमर्हसि ।
शिवाय विश्वरूपाय यन्मां पृच्छद्युधिष्ठिरः ॥ १८ ॥
नाम्नां सहस्रं देवस्य तण्डिना ब्रह्मयोनिना ।
निवेदितं ब्रह्मलोके ब्रह्मणो यत् पुराभवत् ॥ १९ ॥
द्वैपायन प्रभृतयस्तथा चेमे तपोधनाः ।
ऋषयः सुव्रता दान्ताः शृण्वन्तु गदतस्तव ॥ २० ॥
ध्रुवाय नन्दिने होत्रे गोप्त्रे विश्वसृजेऽग्नये ।
महाभाग्यं विभो ब्रूहि मुण्डिनेऽथ कपर्दिने ॥ २१ ॥

वासुदेव उवाच—

न गतिः कर्म्मणां शक्या वेत्तुमीशस्य तत्त्वतः ।
हिरण्यगर्भ प्रमुखा देवाः सेन्द्रा महर्षयः ॥ २२ ॥
न विदुर्यस्य भवनमादित्याः सूक्ष्मदर्शिनः ।
स कथं नरमात्रेण शक्यो ज्ञातुं सतां गतिः ॥ २३ ॥
तस्याहमसुरघ्नस्य कांश्चित् भगवतो गुणान् ।
भवतां कीर्तयिष्यामि व्रतेशाय यथातथम् ॥ २४ ॥

भीष्म बोले—हे सुरासुर गुरु विष्णुदेव ! विश्वरूप शिवजीके विषय में युधिष्ठिर ने मुझ से जो प्रश्न किया है उसका उत्तर देने में तुम समर्थ हो। पहिले ब्रह्मलोक में ब्रह्मा के समीप उनके पुत्र तण्डी ऋषिने शिवजीके जिन हजार नामोंका वर्णन किया था उन नामों को द्वैपायन आदि उत्तम व्रत करने वाले जितेन्द्रिय ऋषि लोग तुम्हारे मुख से सुनें। आप उस कूटस्थ, आनन्दमय, कर्तृस्वरूप, कर्म फल दान करके रक्षा करने वाले विश्वस्रष्टा, गार्हपत्य अग्नि स्वरूप, मुण्डी और कपर्दी विश्वेश्वर का ऐश्वर्य वर्णन करिये।

श्रीकृष्णचन्द्र बोले—हिरण्यगर्भ से लेकर इन्द्र सहित समस्त देवता और महर्षि लोग भी ईश्वर के कर्मों की गति को यथार्थ रूप से जानने में समर्थ नहीं हैं। सूक्ष्मदर्शी आदित्यादि देववृन्द जिसके स्थान को नहीं जान सकते वह साध्यों की गति स्वरूप ईश्वर मनुष्यों को किस तरह मालूम होगा। इसलिये मैं आप से व्रतपूर्वक किये हुये यज्ञों के फल

वैशम्पायन उवाच—

एवमुक्त्वा तु भगवान् गुणांस्तस्य महात्मनः ।
उपस्पृश्य शुचिर्भूत्वा कथयामास धीमतः ॥ २५ ॥

वासुदेव उवाच—

शुश्रूषध्वं ब्राह्मणेन्द्रास्त्वञ्च तात युधिष्ठिर ।
त्वञ्चापगेय नामानि श्रृणुष्वेह कपर्दिने ॥ २६ ॥
यद्वाप्तञ्च मे पूर्वं शाम्बहेतोः सुदुष्करम् ।
यथावद्भगवान्दृष्टो मया पूर्वं समाधिना ॥ २७ ॥
शम्बरे निहते पूर्वं रौक्मिणेयेन धीमता ।
अतीते द्वादशे वर्षे जाम्बवत्यब्रवीद्धि माम् ॥ २८ ॥
प्रद्युम्न चारुदेष्णादीन् रुक्मिण्या वीक्ष्य पुत्रकान् ।
पुत्रार्थिनी मामुपेत्य वाक्यमाह युधिष्ठिर ॥ २९ ॥
शूरं बलवतां श्रेष्ठं कान्तरूपमकल्मषम् ।
आत्मतुल्यं मम सुतं प्रयच्छाऽच्युत मा चिरम् ॥ ३० ॥

देनेवाले असुरनाशक भगवान् के कुछ गुणों का यथार्थ रीति से वर्णन करूँगा ।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले—यह कहकर भगवान् कृष्ण आचमनादि के रूप में जलस्पर्श द्वारा पवित्र होकर उस धीमान् महात्मा के गुणों का वर्णन करने लगे ।

श्रीकृष्ण बोले—हे द्विजेन्द्रगण ! हे तात धर्मराज ! हे गाङ्गेय ! आप भी इस समय कपर्दी के नामों को सुनिये । पहिले मैंने शाम्ब के निमित्त जिन सब अत्यन्त दुष्कर नामों को प्राप्त किया था उसे ही वर्णन करूँगा । पहिले मैंने समाधि के द्वारा उस भगवान् का दर्शन किया था । बुद्धिमान रुक्मिणीपुत्र प्रद्युम्न के हाथ से शम्बरासुर के मारे जाने पर बारह वर्ष के अनन्तर जाम्बवती ने मुझसे कुछ कहने की इच्छा की । वह प्रद्युम्न और चारुदेष्ण आदि रुक्मिणी के पुत्रों को देखकर पुत्र की कामना करके मेरे निकट आकर बोली । हे अच्युत ! तुम शीघ्र ही मुझे अपने समान बलवानों में श्रेष्ठ, सुन्दर और शुद्धचित्त पुत्र प्रदान करो ।

न हि तेऽप्राप्यमस्तीह त्रिषु लोकेषु किञ्चन ।
लोकान् सृजेस्त्वमपरानिच्छन् यदुकुलोद्वह ॥ ३१ ॥
त्वया द्वादशवर्षाणि व्रतीभूतेन शुष्यता ।
आराध्य पशुभर्तारं रुक्मिण्यां जनिताः सुताः ॥ ३२ ॥
चारुदेष्णः सुचारुश्च चारुवेशो यशोधनः ।
चारुश्रवाश्चारुयशाः प्रद्युम्नः शम्भुरेव च ॥ ३३ ॥
यथा ते जनिताः पुत्रा रुक्मिण्यां चारुविक्रमाः ।
तथा ममापि तनयं प्रयच्छ मधुसूदन ॥ ३४ ॥
इत्येवं चोदितो देव्या तामवोचं सुमध्यमाम् ।
अनुजानीहि मां राज्ञि करिष्ये वचनं तव ॥ ३५ ॥
सा च मामब्रवीद्गच्छ विजयाय शिवाय च ।
ब्रह्मा शिवः काश्यपश्च नद्यो देवा मनोनुगाः ॥ ३६ ॥
क्षेत्रौषध्यो यज्ञवाहा श्छन्दांस्यृषिगणा धराः ।
समुद्रा दक्षिणास्तोभा ऋक्षाणि पितरो ग्रहाः ॥ ३७ ॥
देवपत्न्यो देवकन्या देवमातर एव च ।
मन्वन्तराणि गावश्च चन्द्रमाः सविता हरिः ॥ ३८ ॥

हे यदुकुलधुरन्धर ! तीनों लोकों में तुम्हारे लिये कुछ भी अप्राप्य नहीं है। इच्छा करने से तुम दूसरे लोकों की सृष्टि कर सकते हो। तुमने बारह वर्ष का व्रत करके शरीर सुखाकर महादेव की आराधना करके चारुदेष्ण, सुचारु, चारुवेश, यशोधन, चारुश्रवा, चारुयशा, प्रद्युम्न और शम्भु ये सब सुन्दर तथा पराक्रमी पुत्र जैसे रुक्मिणी के गर्भ से उत्पन्न किये वैसे ही मुझे भी एक पुत्र प्रदान करो।

जाम्बवती के ऐसे वचन सुनकर मैंने उस सुन्दरी से कहा हे रानी! तुम अनुमति दो, मैं तुम्हारे वचन का पालन करूँगा। उसने मुझसे कहा तुम विजय और मंगल के निमित्त प्रस्थान करो।

हे यादव ! ब्रह्मा, शिव, काश्यप, नदियां, मन के अनुगामी सब देवता, देवताओं को हव्य पहुँचाने वाले यज्ञ, औषधियाँ, छन्द समूह, ऋषिवृन्द, पृथ्वी समुद्र, दक्षिणा, स्तोभ वाक्य अर्थात् सामके पूरक "हुँमा" इत्यादि अक्षर, तारागण, पितर, ग्रह, देवपत्नियां, देव कन्यायें और देव मातायें, मन्वन्तर

सावित्री ब्रह्मविद्या च ऋतवो वत्सरस्तथा ।
क्षणा लवा मुहूर्ताश्च निमेषा युगपर्ययाः ॥ ३९ ॥
रक्षन्तु सर्वत्र गतं त्वां यादव सुखाय च ।
अरिष्टं गच्छ पन्थानमप्रमत्तो भवानघ ॥ ४० ॥

एवं कृतस्वस्त्ययनस्तथाहं
ततोऽभ्यनुज्ञाय कपीन्द्र पुत्रीम् ।
पितुः समीपं नरसत्तमस्य
मातुश्च राज्ञश्च तथाहुकस्य ॥ ४१ ॥
गत्वा समावेद्य यदब्रवीन्मां
विद्याधरेन्द्रस्य सुता भृशार्ता ।
तानभ्यनुज्ञाय तदातिदुःखाद्
गदं तथैवातिबलञ्च रामम् ॥ ४२ ॥
अथोचतुः प्रीतियुतौ तदानीं
तपःसमृद्धिर्भवतोऽस्त्वविघ्नम् ॥ ४३ ॥
प्राप्यानुज्ञां गुरुजनादहं तार्क्ष्यमचिन्तयम् ।
सोऽवहद्धिमवन्तं मां प्राप्य चैनं व्यसर्जयम् ॥ ४४ ॥

गौ, चद्रन्मा सूर्य, हरि, सावित्री, ब्रह्म विद्या, ऋतुयें, वर्ष, क्षण, लव, मुहूर्त्त, निमेष, और युगपर्यय ये सब, जहां तुम जाओ उसी स्थान में तुम्हारी रक्षा करें और तुम्हारे सुख के कारण होवें । हे पाप रहित ! तुम सावधान होकर निर्विघ्न मार्ग में गमन करो ।

ऋक्षराजपुत्री के ऐसा स्वस्त्ययन करने पर उसकी अनुमति लेकर फिर पुरुषों में श्रेष्ठ पिता, माता और राजा आहुक (उग्रसेन) के निकट जाकर जाम्बवती ने अत्यन्त आर्त होके मुझसे जो कहा था मैंने उसे निवेदन करके अत्यन्त दुःख के साथ उनसे विदा लेकर गद और महाबलवान् बलदेव से सब वृत्तान्त वर्णन करके उनकी अनुमति मांगी ।

उस समय उन्होंने प्रसन्न होके कहा—तुम्हारे तप की निर्विघ्न वृद्धि हो । गुरुजनों की आज्ञा पाने के बाद मैंने गरुड़ को स्मरण किया । गरुड़ पर चढ़ कर मैं हिमालय पहाड़ पर गया और वहां पहुँचकर मैंने उसे विदा कर दिया । उस पर्वत पर जाकर आश्चर्यमय दृश्यों को देखने

तत्राहमद्भुतान् भावानपश्यं गिरिसत्तमे ।
क्षेत्रञ्च तपसां श्रेष्ठं पश्यास्यद्भुतमुत्तमम् ॥ ४५ ॥
दिव्यं वैयाघ्रपादस्य उपमन्योर्महात्मनः ।
पूजितं देवगन्धर्वैर्ब्राह्मया लक्ष्म्या समावृतम् ॥ ४६ ॥
धव ककुभ कदम्ब नारिकेलैः
कुरवककेतकजम्बु पाटलाभिः ।
वट वरुणक वत्सनाभ विल्वैः
सरलकपित्थप्रियालशालतालैः ॥ ४७ ॥
वदरीङ्गुदपुन्नागैरशोकाम्रातिमुक्तकैः ।
मधुकैः कोविदारैश्च चम्पकैः पनसैस्तथा ॥ ४८ ॥
अन्यैर्बहुविधैर्वृक्षैः फलपुष्पप्रदैर्युतम् ।
पुष्पगुल्मलताकीर्णं कदलीषण्डशोभितम् ॥ ४९ ॥
नाना शकुनि संभोज्यैः फलैर्वृक्षैरलंकृतम् ।
यथास्थानविनिक्षिप्तैर्भूषितं भस्मराशिभिः ॥ ५० ॥
रुरु वानर शार्दूल सिंह द्वीपि समाकुलम् ।
कुरङ्गबर्हिणाकीर्णं मार्जारभुजगावृतम् ॥ ५१ ॥

लगा । मैंने व्याघ्र पाद गोत्र के महानुभाव उपमन्यु का, जो तपस्वियों के श्रेष्ठ क्षेत्र के नाम से विख्यात था अद्भुत उत्तम और दिव्य आश्रम देखा। वह आश्रम देवताओं और गन्धर्वों से पूजित तथा ब्राह्मी लक्ष्मी से समावृत था । वह स्थान धव, ककुभ, कदम्ब, नारियल, कुरवक, केतकी, जामुन, पाटल, वट, वरुण, वत्सनाभ, वेल, सरल, कपित्थ, प्रियाल, शाल, ताल, बदरी, इंगुद, पुन्नाग, अशोक, आम, अतिमुक्त, मधुक, कोविदार, चम्पा, पनस (कटहर) और दूसरे अनेक प्रकार के फल और फूलों से युक्त वृक्षों से घिरा हुआ था ।

वह आश्रम पुष्प गुल्म और लताओं से परिपूरित, केले के खम्भों से शोभित, नाना प्रकार के पक्षियों के भोजन के योग्य फल वाले वृक्षों से घिरा हुआ और यथायोग्य स्थान में रखी हुई भस्म से ढकी हुई अग्नि से विभूषित था । रुरु, बन्दर, शार्दूल, सिंहद्वीपी नाम पशुओं से व्याप्त, हरिण, मयूर, मार्जार और सर्पों से परिपूर्ण अनेक प्रकार के मृगों से

पूगैश्च मृगजातीनां महिषर्क्षनिषेवितम् ।
दिव्यस्त्रीगीतबहुलो मारुतोऽभिमुखो ववौ ॥ ५२ ॥
धारानिनादैर्विहगप्रणादैः
शुभैस्तथा बृंहितैः कुञ्जराणाम् ।
गीतैस्तथा किन्नराणामुदारैः
शुभैः स्वनैः सामगानां च वीर ॥ ५३ ॥
अचिन्त्यं मनसाप्यन्यैः सरोभिः समलङ्कृतम् ।
विशालैश्चाग्निशरणैर्भूषितं कुसुमावृतैः ॥ ५४ ॥
विभूषितं पुण्य पवित्र तोयया
सदा च जुष्टं नृप जह्नुकन्यया ।
विभूषितं धर्मभृतां वरिष्ठै
र्महात्मभिर्वह्निसमानकल्पैः ॥ ५५ ॥
वाय्वाहारैरम्बुपैर्जप्य नित्यैः
संप्रक्षालैर्योगिभिर्ध्याननित्यैः ।
धूमप्राशैरूष्मपैः क्षीरपैश्च
संजुष्टश्च ब्राह्मणेन्द्रैः समन्तात् ॥ ५६ ॥

समूह भैंसे और रीछों से निषेवित था। वहां पर विविध पुष्पों की सुगन्धियुक्त, दिव्य स्त्रियों के संगीत के समान सुखस्पर्श युक्त वायु बह रही थी। हे वीर! वह स्थान जलधारा के निनाद, पक्षियों की बोली, हाथियों के मनोहर चिग्घाड़, किन्नरों के उदार गीत और सामगान करने वाले ब्राह्मणों की पवित्र ध्वनि से अलंकृत था। वह स्थान ब्रह्मर्षियों के सिवाय दूसरे पुरुषों के ध्यान में भी न आने वाला, तड़ागों से अलंकृत और पुष्पों से घिरी हुई विशाल अग्निशालाओं से अत्यन्त शोभायमान था। हे महाराज! वह आश्रम पवित्र जलवाहिनी जन्हुनन्दिनी श्रीगङ्गाजी से सदा सेवित और विभूषित तथा अग्नि के समान तेजस्वी महात्माओं के वास से अलंकृत था।

वायु तथा जल पीने वाले जप में रत शास्त्ररीति से चित्त को शोधन करने वाले ध्याननिष्ठ योगी जनों और धूम्र पान करने वाले सूर्य की किरणों का भक्षण करने वाले दुग्धाहारी ब्राह्मणेन्द्रों के द्वारा सब भांति से सेवित था।

२

गोचारिणोऽथाश्मकुट्टा दन्तोलूखलिकास्तथा ।
मरीचिपाः फेनपाश्च तथैव मृगचारिणः ॥ ५७ ॥
अश्वत्थफलभक्षाश्च तथा ह्युदकशायिनः ।
चीरचर्माम्बरधरास्तथावल्कलधारिणः ॥ ५८ ॥
सुदुःखान्नियमांस्तांस्तान्वहतः सुतपोधनान् ।
पश्यन्मुनीन् बहुविधान् प्रवेष्टुमुपचक्रमे ॥ ५९ ॥
सुपूजितं देवगणैर्महात्मभिः
शिवादिभिर्भारतपुण्यकर्मभिः ।
रराज तच्चाश्रममण्डलं सदा
दिवीवराजन् शशिमण्डलं यथा ॥ ६० ॥
क्रीडन्ति सर्पैर्नकुला मृगैर्व्याघ्राश्च मित्रवत् ।
प्रभावात् दीप्ततपसां सन्निकर्षान्महात्मनाम् ॥ ६१ ॥
तत्राश्रमपदे श्रेष्ठे सर्वभूतमनोरमे ।
सेविते द्विजशार्दूलैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ॥ ६२ ॥
नानानियमविख्यातैर्ऋषिभिः सुमहात्मभिः ।
प्रविशन्नेव चापश्यं जटाचीरधरं प्रभुम् ॥ ६३ ॥

गोचरी अर्थात् गौ के समान मुख से आहार करने वाले, पत्थर प[ा] कूट कर खाने वाले, मरीचिप अर्थात् चन्द्रकिरण पान करके जीवन धार[ण] करने वाले, जल के फेन का पान करने वाले, मृगचारी, पीपल के फल [को] खाकर रहने वाले, जल में शयन करने वाले, चीर और मृग चर्माम्बरधा[री] तथा वल्कल पहनने वाले और अत्यन्त कष्ट से उन सब नियमों में तत्[पर] रहने वाले अनेक प्रकार के तपस्वी मुनियों का दर्शन करके मैंने उस स्था[न] में प्रवेश करने की इच्छा की। हे भारत! हे राजन्! आकाश में च[न्द्र]मण्डल की भांति वह आश्रम मण्डल पुण्य कर्म करने वाले महानुभा[व] शिव जी आदि देवताओं से सदा उत्तम रीति से पूजित होकर विराजमा[न] था। महातपस्वी महात्माओं के सहवास और प्रभाव से वहां पर नेव[ले] विषधर सापों के साथ और बाघ मृगों के साथ मित्र की भांति क्री[डा] करते थे। वेद वेदांग के जानने वाले विविध नियमों के पालन [में] प्रसिद्ध द्विजश्रेष्ठ महानुभाव महर्षियों से सेवित, सब जीवों के मन [को] प्रसन्न करने वाले, उस श्रेष्ठ आश्रम स्थल में प्रवेश करते ही मैंने

तेजसा तपसा चैव दीप्यमानं यथानलम् ।
शिष्यैरनुगतं शान्तं युवानं ब्राह्मणर्षभम् ॥ ६४ ॥
शिरसा वन्दमानं मामुपमन्युरभाषत ।
स्वागतं पुण्डरीकाक्ष सफलानि तपांसि नः ।
यः पूज्यः पूजयसि मां द्रष्टव्यो द्रष्टुमिच्छसि ॥ ६५ ॥
तमहं प्राञ्जलिर्भूत्वा मृगपक्षिष्वथाग्निषु ।
धर्मे च शिष्यवर्गे च समपृच्छमनामयम् ॥ ६६ ॥
ततो मां भगवानाह साम्ना परम वल्गुना ।
लप्स्यसे तनयं कृष्ण आत्मतुल्यमसंशयम् ॥ ६७ ॥
तपः सुमहदास्थाय तोषयेशानमीश्वरम् ।
इह देवः सपत्नीकः समाक्रीडत्यधोक्षज ॥ ६८ ॥
इहैनं दैवतश्रेष्ठं देवाः सर्षिगणाः पुरा ।
तपसा ब्रह्मचर्य्येण सत्येन च दमेन च ॥ ६९ ॥
तोषयित्वा शुभान् कामान् प्राप्तवन्तो जनार्दन ।
तेजसां तपसाञ्चैव निधिः स भगवानिह ॥ ७० ॥

जटाचीरधारी, तेज और तपस्या के द्वारा अग्नि के समान प्रकाशमान, शिष्यों के सहित, शान्त, यौवनसम्पन्न, द्विजवर उपमन्यु का दर्शन किया। जब मैंने शिर झुका कर उनकी वन्दना की तब वह मुझसे बोले—हे पुण्डरीकाक्ष! तुमनें सुख से आगमन किया है न? हमलोगों की तपस्या सफल हुई क्योंकि तुम पूज्य होकर भी हमारी पूजा करते हो और हमारे दर्शनीय होनेपर भी हम लोगों के दर्शन की इच्छा करते हो। मैंने हाथ जोड़ के उनसे मृग, पक्षी, अग्नि, धर्म, और शिष्यों के विषय में कुशल प्रश्न किया। अनन्तर भगवान् उपमन्यु मुझसे परम मनोहर शान्त वचन बोले—हे कृष्ण! तुम अपने समान पुत्र निःसन्देह प्राप्त करोगे। तुम उग्र तपस्या में स्थित होकर सर्व नियन्ता महादेव को सन्तुष्ट करो। हे अधोक्षज! वह देव अपनी पत्नी अर्थात् शक्ति के साथ इस स्थान में सदा विहार करते हैं। प्राचीन समय में यहीं देवताओं में श्रेष्ठ शङ्करजी को देवता और ऋषिगणों ने तपस्या, ब्रह्मचर्य, सत्य और दम के द्वारा प्रसन्न करके शुभ कर्मों को प्राप्त किया था। हे शत्रुनाशन! तुम जिसकी प्रार्थना करते हो वह तपोनिधि और तेज के आधार अचिन्तनीय भगवान्

शुभाशुभान्वितान् भावान् विसृजन् सङ्क्षिपन्नपि ।
आस्ते देव्या सहाचिन्त्यो यं प्रार्थयसि शत्रुहन् ॥ ७१ ॥
हिरण्यकशिपुर्योऽभूद्दानवो मेरुकम्पनः ।
तेन सर्वामरैश्वर्यं शर्वात् प्राप्तं समार्बुदम् ॥ ७२ ॥
तस्यैव पुत्र प्रवरो मन्दरो नाम विश्रुतः ।
महादेववराच्छक्रं वर्षार्बुदमयोधयत् ॥ ७३ ॥
विष्णोश्चक्रञ्च तद् घोरं वज्रमाखण्डलस्य च ।
शीर्णं पुरा भवत्तात ग्रहस्याङ्गेषु केशव ॥ ७४ ॥
यत्तद्भगवता पूर्वं दत्तं चक्रं तवानघ ।
जलान्तर चरं हत्वा दैत्यञ्च बलगर्वितम् ॥ ७५ ॥
उत्पादितं वृषाङ्केण दीप्तं ज्वलनसन्निभम् ।
दत्तं भगवता तुभ्यं दुर्द्धर्षं तेजसाद्भुतम् ॥ ७६ ॥
न शक्यं द्रष्टुमन्येन वर्ज्जयित्वा पिनाकिनम् ।
सुदर्शनं भवत्येवं भवेनोक्तं तदा तु तत् ॥ ७७ ॥
सुदर्शनं तदा तस्य लोके नाम प्रतिष्ठितम् ।

शुभाशुभ भावों को उत्पन्न करते और अपने में लय करते हुए देवी के सहित इसी स्थान में विराजमान हैं । सुमेरु पर्वत को कँपानेवाला जो हिरण्यकश्यप नामक दानव था उसने महादेव की कृपा से एक अरब वर्ष पर्यन्त सब देवताओं का ऐश्वर्य पाया था । उसी का मुख्य पुत्र मन्दर नाम से प्रख्यात है । उसने महादेव के वर के प्रभाव से एक अरब वर्ष तक इन्द्र के साथ युद्ध किया था । हे तात ! केशव ! विष्णु का वह घोर चक्र और इन्द्र का भयंकर वज्र पहिले समय में उस मन्दर के अङ्गों पर विफल हुआ था ।

हे पापरहित ! पहिले समय में भगवान् वृषभध्वज ने जल के मध्य में विचरण करने वाले अभिमानी दैत्य को मारने के लिये जो अग्नि के समान प्रकाशमान चक्र उत्पन्न किया था, उससे उस दैत्य को मारकर अद्भुत तेज से युक्त दुर्धर्ष चक्र भगवान् ने तुम्हें दे दिया था । पिनाकी के अतिरिक्त दूसरा कोई पुरुष उसकी ओर देखने में समर्थ नहीं था। इसी लिये महादेव ने उस समय कहा था कि यह सुदर्शन होजाय तभी से लोक में वह चक्र सुदर्शन नाम से प्रतिष्ठित होरहा है ।

तज्जीर्णमभवत्तात ग्रहस्याङ्गेषु केशव ॥ ७८ ॥
ग्रहस्यातिवलस्याङ्गे वरदत्तस्य धीमतः ।
न शस्त्राणि वहन्त्यङ्गे चक्रवज्रशतान्यपि ॥ ७९ ॥
अर्द्यमानाश्च विवुधा ग्रहेण सुवलीयसा ।
शिवदत्तवरान् जघ्नुरसुरेन्द्रान्सुरा भृशम् ॥ ८० ॥
तुष्टो विद्युत् प्रभस्यापि त्रिलोकेश्वरतां ददौ ।
शतं वर्ष सहस्राणां सर्वलोकेश्वरोऽभवत् ॥ ८१ ॥
ममैवानुचरो नित्यं भवितासीति चाब्रवीत् ।
तथा पुत्रसहस्राणामयुतञ्च ददौ प्रभुः ॥ ८२ ॥
कुशद्वीपञ्च स ददौ राज्येन भगवानजः ।
तथा शतमुखो नाम धात्रा सृष्टो महासुरः ॥ ८३ ॥
तं प्राह भगवांस्तुष्टः किं करोमीति शङ्करः ।
तं वै शतमुखः प्राह योगो भवतु मेऽद्भुतः ॥ ८४ ॥

हे तात केशव—वह चक्र मन्दर के अङ्गोंपर लग कर जीर्ण तृण के समान व्यर्थ हुआ था । महादेव ने उस मन्दर असुर को यह वर दिया था कि तुम सब शस्त्रों से अवध्य होगे इसी वर के प्रभाव से वह धीमान् प्रवल बलशाली असुर निज अङ्ग पर चक्र और सैकड़ों वज्र आदि शस्त्रों की चोट सहज ही में सह सकता था । जब मन्दर ने देवताओं को अत्यन्त पीडित किया तब देवताओं ने महादेव के दिये हुये वर के प्रभाव से गर्वित दानवों के दल को नष्ट किया । देवताओं के बुद्धि कौशल से ये लोग आपस में कलह करके विनष्ट हुये ।

महादेव ने विजली के समान प्रकाश वाले इस दानव पर प्रसन्न हो कर उसे तीनों लोकों के ऐश्वर्य का दान किया था । वह एक लाख वर्ष तक सब लोकों का ईश्वर हुआ । 'तू सदा मेरा ही अनुचर होगा' यह कह कर भगवान ने उसे अयुत सहस्र (दशहजार) पुत्र प्रदान किये । अजन्मा भगवान् ने उसे कुशद्वीप का राज्य दे दिया । इसके बाद ब्रह्मा के द्वारा उत्पन्न हुए, सौ वर्ष तक अपने माँस से अग्नि को तृप्त करने वाले शतमुख नामक बड़े असुर पर प्रसन्न होकर भगवान शंकर बोले मैं तुम्हारे लिये क्या करूं । शतमुख ने उनसे कहा हे देवों के देव आप मुझे वह अद्भुत योग

बलञ्च दैवतश्रेष्ठ शाश्वतं संप्रयच्छ मे ।
तथेति भगवानाह तस्य तद्वचनं प्रभुः ॥ ८५ ॥
स्वायम्भुवः क्रतुश्चापि पुत्रार्थमभवत्पुरा ।
आविश्य योगेनात्मानं त्रीणि वर्षशतान्यपि ॥ ८६ ॥
तस्य चोपददौ पुत्रान् सहस्रं क्रतुसंमतान् ।
योगेश्वरं देवगीतं वेत्थ कृष्ण न संशयः ॥ ८७ ॥
याज्ञवल्क्य इति ख्यातः ऋषिः परमधार्मिकः ।
आराध्य स महादेवं प्राप्तवानतुलं यशः ॥ ८८ ॥
वेदव्यासश्च योगात्मा पराशरसुतो मुनिः ।
सोऽपि शङ्करमाराध्य प्राप्तवानतुलं यशः ॥ ८९ ॥
वालखिल्या मघवता ह्यवज्ञाताः पुरा किल ।
तैः क्रुद्धैर्भगवान् रुद्रस्तपसा तोषितो ह्यभूत् ॥ ९० ॥
तांश्चापि दैवतश्रेष्ठः प्राह प्रीतो जगत्पतिः ।
सुपर्णं सोमहर्तारं तपसोत्पादयिष्यथः ॥ ९१ ॥

प्रदान करें जिससे मुझमें चन्द्रमा, सूर्य, बादल और पृथ्वी आदि उत्पन्न करने की सामर्थ्य हो और ब्रह्मविद्या से उत्पन्न शाश्वत बल मुझे प्राप्त हो। निग्रहानुग्रह में समर्थ भगवान् ने उसका वह वचन सुनकर कहा—ऐसाही होगा—

प्राचीन कालमें स्वयंभू मनु ने तीन सौ वर्ष तक सूत्रात्मामें प्रवि होकर अर्थात् सूत्रात्मा का ध्यान करते हुए पुत्रके निमित्त यज्ञ किया था। भगवान् ने उसे यज्ञ के सूत्रात्मा के अनुसार सहस्र पुत्र प्रदान किये। हे कृष्ण! देवों से वर्णित योगेश्वर को तुम निःसन्देह जानते हो। याज्ञवल्क्य नाम से विख्यात परम धार्मिक ऋषि महादेव की आराधन करके ही अतुल यशस्वी हुए हैं।

योगियों में श्रेष्ठ पराशर-पुत्र महामुनि वेदव्यास ने भी शंकर की आराधना करके विशेष यश पाया है। पहिले समय में बालखिल्य मुनियों ने देवराज इन्द्र के द्वारा अपमानित होने से क्रुद्ध होकर तपस्या के सहारे महादेव को सन्तुष्ट किया। जगत्पति महादेव प्रसन्न होकर बोले तुम लोग तपस्या के द्वारा अमृत लाने वाले गरुड़ को उत्पन्न करोगे। पूर्वकाल में महादेव के क्रोधवश समस्त जल नष्ट हो गया था। देवताओं

महादेवस्य रोषाच्च आपो नष्टाः पुराभवन् ।
ताश्च सप्तकपालेन दैवैरन्याः प्रवर्तिताः ॥
ततः पानीयमभवत् प्रसन्ने त्र्यंबके भुवि ॥ ६२ ॥
अत्रेर्भार्य्यापि भर्तारं संत्यज्य ब्रह्मवादिनी ।
नाहं तस्य मुनेर्भूयो वशगा स्यां कथञ्चन ॥ ६३ ॥
इत्युक्त्वा सा महादेवमगच्छत् शरणं किल ।
निराहारा भयादत्रेस्त्रीणि वर्षशतान्यपि ॥ ६४ ॥
अशेत मुसलेष्वेव प्रसादार्थं भवस्य सा ।
तामब्रवीद्धसन् देवो भविता वै सुतस्तव ॥ ६५ ॥
विना भर्त्रा च रुद्रेण भविष्यति न संशयः ।
वंशे तवैव नाम्ना तु ख्यातिं यास्यति चेप्सिताम् ॥ ६६ ॥
विकर्णश्च महादेवं तथा भक्त सुखावहम् ।
प्रसाद्य भगवान् सिद्धिं प्राप्तवान् मधुसूदन ॥ ६७ ॥
शाकल्यः संशितात्मा वै नववर्षशतान्यपि ।
आराधयामास भवं मनो यज्ञेन केशव ॥ ६८ ॥

ने सप्तकपाल अर्थात् त्र्यम्बक दैवत मन्त्र के सहारे दूसरा जल उत्पन्न किया। अनन्तर महादेवजी के प्रसन्न होने पर पृथ्वी मण्डल पर समस्त जल पीने योग्य हुआ था।

अत्रि मुनि की ब्रह्मवादिनी भार्य्या ने पति का परित्याग करके प्रतिज्ञा की कि मैं अब फिर कभी किसी प्रकार से भी उस मुनि के आधीन न रहूँगी। ऐसा कह कर वह महेश्वर की शरणागत हुई थी। उसने अत्रि के भय से निराहार रहकर तीन सौ वर्ष तक महादेवजी को प्रसन्न करने के लिये मूसल अर्थात् लौह हल के अग्रभाग पर शयन किया। महेश्वर ने हँस के उससे कहा कि रुद्रमन्त्र के प्रभाव से बिना पति के ही तुम्हारा निःसन्देह पुत्र होगा और वंश में वह तुम्हारे ही नाम से प्रसिद्ध होगा। (उत्तम कीर्त्ति को पावेगा)।

हे मधुसूदन ! भगवान् भक्तिमान् विकर्ण ने सुख देने वाले महादेव को प्रसन्न करके सिद्धि लाभ की थी। हे केशव ! संशितात्मा (तीक्ष्ण बुद्धि) शाकल्य ने नव सौ वर्ष तक मनोयज्ञ से महादेव की आराधना की थी।

तञ्चाह भगवांस्तुष्टो ग्रन्थकारो भविष्यसि ।
वत्साक्षया च ते कीर्तिस्त्रैलोक्ये वै भविष्यति ॥ ६६ ॥
अक्षयश्च कुलं तेऽस्तु महर्षिभिरलंकृतम् ।
भविष्यति द्विजश्रेष्ठः सूत्रकर्ता सुतस्तव ॥ १०० ॥
सावर्णिश्चापि विख्यातो ऋषिरासीत् कृते युगे ।
इह तेन तपस्तप्तं षष्टिवर्षशतान्यथ ॥ १०१ ॥
तमाह भगवान् रुद्रः साक्षात्तुष्टोऽस्मि तेऽनघ ।
ग्रन्थकृल्लोकविख्यातो भवितास्या जरामरः ॥ ०२१ ॥
शक्रेण तु पुरा देवो वाराणस्यां जनार्दन ।
आराधितोऽभूद्भक्तेन दिग्वासा भस्मगुण्ठितः ॥ १०३ ॥
आराध्य च महादेवं देवराज्यमवाप्तवान् ।
नारदेन तु भक्त्याऽसौ भव आराधितः पुरा ॥
तस्य तुष्टो महादेवो जगौ देव गुरुर्गुरुः ॥ १०४ ॥
तेजसा तपसा कीर्त्या त्वत्समो न भविष्यति ।
गीतेन वादितव्येन नित्यं मामनुयास्यसि ॥ १०५ ॥

भगवान् प्रसन्न होकर बोले हे पुत्र ! तुम ग्रन्थकर्ता होगे और तीनों लोकों में तुम्हारी अक्षय कीर्ति होगी। महर्षि कुल के द्वारा अलंकृत तुम्हारा वंश अक्षय होगा। और तुम्हारा पुत्र द्विजश्रेष्ठ तथा सूत्रकर्ता होगा।

सतयुग में सावर्णि नामक एक विख्यात ऋषि थे। उन्होंने इस स्थान में छःहजार वर्ष तक तपस्या की थी। भगवान् रुद्रदेव स्वयं उनसे बोले हे अनघ ! मैं तुम पर प्रसन्न हुआ हूं तुम अजर और अमर होके लोक में प्रसिद्ध ग्रन्थकर्त्ता होगे। हे जनार्दन ! पहिले समय में दिग्वासा भस्मगुंठित भगवान् काशीधाम में भक्तवर इन्द्र के द्वारा पूजित हुये थे। उन्होंने महादेव की आराधना करके देवराज्य पाया।

पहिले समय में नारद मुनि ने भक्तिभाव से महादेव की आराधना की थी। देवगुरु महादेव प्रसन्न होकर उनसे बोले—तेज तपस्या और कीर्त्ति के द्वारा तुम्हारे समान कोई भी न होगा। गायन और वाद्य द्वारा तुम सदा मेरे अनुगामी रहोगे।

मयापि च यथा दृष्टो देवदेवः पुरा विभो ।
साक्षात् पशुपतिस्तात तच्चापि शृणु माधव ॥ १०६ ॥
यदर्थं च मया देवः प्रयत्नेन तथा विभो ।
प्रबोधितो महातेजास्तच्चापि शृणु विस्तरम् ॥ १०७ ॥
यद्वाप्तश्च मे पूर्वं देवदेवान् महेश्वरात् ।
तत्सर्वं निखिलेनाद्य कथयिष्यामि तेऽनघ ॥ १०८ ॥
पुरा कृतयुगे तात ऋषिरासीन्महायशाः ।
व्याघ्रपाद इति ख्यातो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ १०९ ॥
तस्याहमभवं पुत्रो धौम्यश्चापि ममानुजः ।
कस्यचित्त्वथ कालस्य धौम्येन सह माधव ॥ ११० ॥
आगच्छमाश्रमं क्रीडन् मुनीनां भावितात्मनाम् ।
तत्रापि च मया दृष्टा दुह्यमाना पयस्विनी ॥
लक्षितश्च मया क्षीरं स्वादुतो ह्यमृतोपमम् ॥ १११ ॥
ततोऽहमब्रवं बाल्याज्जननीमात्मनस्तथा ।
क्षीरौदनसमायुक्तं भोजनं हि प्रयच्छ मे ॥ ११२ ॥
अभावाच्चैव दुग्धस्य दुःखिता जननी तदा ।
ततः पिष्टं समालोड्य तोयेन सह माधव ॥ ११३ ॥

हे तात ! हे विभो ! हे माधव ! पूर्वकाल में मैंने जिस प्रकार देवों के देव पशुपति का साक्षात् दर्शन किया था, उसे भी तुम विस्तार पूर्वक सुनो। हे अनघ पहिले मैंने सावधान होकर देवों के देव महा तेजस्वी महादेव को जिस लिये प्रबोधित किया था और उस महेश्वर से जो कुछ प्राप्त किया था, वह सब वृतान्त इस समय पूर्ण रीति से कहता हूं ।

हे तात ! सतयुग में वेद वेदांग जानने वाले, महा यशस्वी व्याघ्रपाद नाम के एक ऋषि थे । मैं उनका पुत्र था और धौम्य हमारा भाई था । हे माधव ! कुछ काल बाद धौम्य के संग खेलते हुए आत्मज्ञ मुनियों के आश्रम में पहुँच गया । वहां पर मैंने किसी दूध देनेवाली गऊ का दूध दुहना देखा । वह दूध अमृत के समान स्वादिष्ट मालूम हुआ ।

अनन्तर बाल्यकाल की सुलभ चपलता से मैंने अपनी माता से कहा हे माता ! मुझे क्षीरयुक्त भोजन प्रदान करो । उस समय मेरी माता ने दूध के अभाव से दुखित होकर चावल पीसकर पिसान बनाया और

आवयोः क्षीरमित्येवं पानार्थं समुपानयत् ।
अथ गव्यं पयस्तात कदाचित् प्राशितं मया ॥
पित्राहं यज्ञकाले हि नीतो ज्ञातिकुलं महत् ॥ ११४ ॥
तत्र सा क्षरते देवी दिव्या गौः सुरनन्दिनी ।
तस्याहं तत्पयः पीत्वा रसेन ह्यमृतोपमम् ॥ ११५ ॥
ज्ञात्वा क्षीरगुणांश्चैव उपलभ्य हि संभवम् ।
स च पिष्टरसस्तात न मे प्रीतिमुपावहत् ॥ ११६ ॥
ततोऽहमब्रवं बाल्याज्जननीमात्मनस्तदा ।
नेदं क्षीरोदनं मातर्यच्च मे दत्तवत्यसि ॥ ११७ ॥
ततो मामब्रवीन् माता दुःखशोकसमन्विता ।
पुत्रस्नेहात् परिष्वज्य मूर्ध्नि चाघ्राय माधव ॥ ११८ ॥
कुतः क्षीरौदनं वत्स मुनीनां भावितात्मनाम् ।
वने निवसतां नित्यं कन्दमूलफलाशिनाम् ॥ ११९ ॥
आस्थितानां नदीं दिव्यां बालखिल्यैर्निषेविताम् ।
कुतः क्षीरं वनस्थानां मुनीनां गिरिवासिनाम् ॥ १२० ॥
पावनानां वनाशानां वनाश्रमनिवासिनाम् ।

जल में घोलकर यह दूध है, ऐसी कहती हुई हम दोनों भाइयों को पिलाने के लिये लाई ।

हे तात ! मैंने पहिले एक बार गऊ का दूध पिया था । मेरे पि[illegible] मुझे एक बड़ी बिरादरी के यज्ञ में ले गये । वहां दिव्य गऊ सुरनन्दि[illegible] का दूध क्षरता था । मैं उसका वही अमृत समान दूध पीकर उस [illegible] गुण और जिस प्रकार उसकी उत्पत्ति होती है उसे जान गया [illegible] इसलिये वह पिष्ट रस मुझे रुचिकर नहीं हुआ ।

हे तात ! उस समय मैंने बालस्वभाव से अपनी माता से क[illegible] हे माता ! तुमने मुझे जो दिया है, वह दूध नहीं है । हे माधव ! तब दुः[illegible] और शोक से युक्त माता ने पुत्र स्नेह-वश मुझे गोदी में ले मस्त[illegible] सूंघकर कहा हे पुत्र ! निरन्तर वन में रह कर कंद मूल फल का भोज[illegible] करने वाले आत्मज्ञ ऋषियों के आश्रम में क्षीरोदन कहां है ।

जो लोग बालखिल्य गण से निषेवित दिव्य नदी का अवलम्बन कि[illegible] हुये हैं, बनवासी और पर्वतनिवासी मुनियों के निकट दूध कहां है ?

ग्राम्याहार निवृत्तानामरण्यफल भोजिनाम् ॥ १२१ ॥
नास्ति पुत्र पयोरण्ये सुरभेर्गोत्र वर्जिते ।
नदीगह्वरशैलेषु तीर्थेषु विविधेषु च ॥ १२२ ॥
तपसा जप्यनित्यानां शिवो नः परमा गतिः ।
अप्रसाद्य विरूपाक्षं वरदं स्थाणुमव्ययम् ॥ १२३ ॥
कुतः क्षीरौदनं वत्स सुखानि वसनानि च ।
तं प्रपद्य सदा वत्स सर्वभावेन शङ्करम् ॥ १२४ ॥
तत् प्रसादाच्च कामेभ्यः फलं प्राप्स्यसि पुत्रक ।
जनन्यास्तद्वचः श्रुत्वा तदाप्रभृति शत्रुहन् ॥ १२५ ॥
प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा इदमम्बामचोदयम् ।
कोयमम्ब महादेवः स कथञ्च प्रसीदति ॥ १२६ ॥
कुत्र वा वसते देवो द्रष्टव्यो वा कथञ्चन ।
तुष्यते वा कथं शर्वो रूपं तस्य च कीदृशम् ॥
कथं ज्ञेयः प्रसन्नो वा दर्शयेज्जननी मम ॥ १२७ ॥
एवमुक्ता तदा कृष्ण माता मे सुतवत्सला ।

हे पुत्र ! वायु और जल पीनेवाले तथा ग्राम में मिल सकने वाले आहार से रहित जङ्गल के फल खाने वाले आश्रम निवासी ऋषियों के सुरभी गौ की संतान रहित वन में दूध नहीं है । नदी गुफा पर्वत और विविध तीर्थों में हम लोग तपस्या के द्वारा जप करते हैं । इसलिये देवों के देव महेश्वर ही हम लोगों को परमगति हैं । हे पुत्र ! अचल अविनाशी, त्रिनेत्र और वरदाता महादेवजी को प्रसन्न किये बिना क्षीरोदन और सुख के साधन वस्त्र आदि कहां से प्राप्त होंगे ? हे पुत्र ! इसलिये तुम्हें सब प्रकार से चित्त लगा कर उसी महादेव की शरण जाना उचित है उन्हीं की कृपा से तुम सब वाञ्छनीय फल पावोगे ।

हे शत्रुनाशन ! माता के ऐसे बचन सुन कर उस समय हाथ जोड़ कर विनय पूर्वक मैंने उनसे कहा । हे माता ! वे महादेव कौन हैं ? और कैसे प्रसन्न होते हैं ।

वह कहां रहते हैं और कैसे दिखाई देते हैं । वह कैसे संतुष्ट होते हैं और उनका रूप किस तरह का है । किस प्रकार लोग उन्हें प्रसन्न हुआ जान सकते हैं । हे माता तुम मुझसे यह सब वर्णन करो । हे कृष्ण !

मूर्धन्याघ्राय गोविन्द सबाष्पाकुललोचना ॥ १२८ ॥
प्रमार्जतीव गात्राणि मम वै मधुसूदन ।
दैन्यमालम्ब्य जननी इदमाह सुरोत्तम ॥ १२९ ॥

अम्बोवाच ।

दुर्विज्ञेयो महादेवो दुराधारो दुरन्तकः ।
दुराबाधश्च दुर्ग्राह्यो दुर्दृशो ह्यकृतात्मभिः ॥ १३० ॥
यस्य रूपाण्यनेकानि प्रवदन्ति मनीषिणः ।
स्थानानि च विचित्राणि प्रसादाश्चाप्यनेकशः ॥ १३१ ॥
को हि तत्वेन तद्वेद ईशस्य चरितं शुभम् ।
कृतवान् यानि रूपाणि देव देवः पुरा किल ॥ १३२ ॥
क्रीडते च तथा शर्वः प्रसीदति यथा च वै ।
हृदिस्थः सर्वभूतानां विश्वरूपो महेश्वरः ॥ १३३ ॥
भक्तानामनुकम्पार्थं दर्शनञ्च यथा श्रुतम् ।
मुनीनां ब्रुवतां दिव्यमीशानचरितं शुभम् ॥ १३४ ॥

उस समय पुत्रवत्सला माता से जब मैंने ऐसा वचन कहा तो वह मेरा मस्तक सूँघ कर, नेत्रों में जल भर कर, शरीर पर हाथ फेर कर दीनता के साथ बोली। हे तात! महादेव दुर्विज्ञेय हैं अर्थात् उन्हें शास्त्र से जानना अशक्य है। वह दुराधार हैं अर्थात् शास्त्र से ज्ञान होने पर भी मन में धारण करना अशक्य है, दुरन्तक अर्थात् ध्रियमान होने पर भी लय विक्षेप के द्वारा संकट युक्त हैं। दुराबाध है अर्थात् उसमें सब बन्ध दूषित हुआ करते हैं। विघ्नाभाव में भी वह दुर्ग्राह्य है वह सहज में नहीं जाना जाता और पुण्यहीन मनुष्यों को दुर्दृश्य है। (वैराग्य से भी वह किसी के दृष्टिगोचर नहीं होता)। मनीषी लोग उसके अनेक प्रकार के रूप, विचित्र स्थान और अनेक भांति की कृपा दृष्टि का वर्णन करते हैं। उस ईश्वर के शुभ चरित को जानने में कौन समर्थ है? पहिले समय में देवों के देव विश्वरूप महेश्वर ने जिन रूपों को धारण किया था तथा वह जिस प्रकार क्रीड़ा करते थे, जैसे प्रसन्न होते थे, सब प्राणियों के हृदयस्थ होने पर भी भक्तों पर कृपा करके जिस प्रकार रूप धारण करते हैं, जिस भांति उनका दर्शन किया जा सकता है, महादेव

कृतवान् यानि रूपाणि कथितानि दिवौकसैः ।
अनुग्रहार्थं विप्राणां शृणु वत्स समासतः ।
तानि ते कीर्तयिष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ १३५ ॥

अम्बोवाच ।

ब्रह्म विष्णुसुरेन्द्राणां रुद्रादित्याश्विनामपि ।
विश्वेषामपि देवानां वपुर्धारयते भवः ॥ १३६ ॥
नराणां चैव नारीणां तथा प्रेतपिशाचयोः ।
किरातशवराणाञ्च जलजानामनेकशः ।
करोति भगवान् रूपाण्याटव्य शवराण्यपि ॥ १३७ ॥
कूर्मो मत्स्यस्तथा शङ्खः प्रवालांकुरभूषणः १३८ ॥
यक्षराक्षससर्पाणां दैत्यदानवयोरपि ।
वपुर्धारयते देवो भूयश्च विलवासिनाम् ॥ १३९ ॥
व्याघ्रसिंहमृगाणाञ्च तरक्ष्वृक्षपतत्रिणाम् ।
उलूकस्य शृगालानां रूपाणि कुरुतेऽपि च ॥ १४० ॥
हंसकाकमयूराणां कृकलासक सारसाम् ।
रूपाणि च वलाकानां गृध्रचक्राङ्गयोरपि ॥ १४१ ॥

के पवित्र चरित्र जानने वाले मुनियों के मुख से उनके शुभ चरित्रों को मैंने जिस प्रकार से सुना है, ब्राह्मणों पर अनुग्रह करने के निमित्त उन्होंने जो रूप धारण किये थे देवताओं के कहे हुये उन सब विषयों को संक्षेप से सुनो । तुमने मुझसे जो प्रश्न किया था वह वृत्तान्त तुमसे कहती हूं ।

माता बोली—भगवान् महेश्वर, ब्रह्मा, विष्णु, महेन्द्र, रुद्र, आदित्य, देवता, अश्विनी कुमार और विश्वदेवगण के रूप को धारण करते हैं । पुरुष, स्त्री, प्रेत, पिशाच, किरात शवर और विविध जलचर तथा वनचर जीवों का रूप धारण किया करते हैं । वह देव, कूर्म, शंख और प्रवालांकुर भूषण यक्ष, राक्षस, सर्प, दैत्य, दानव और बिल में रहने वालों के रूप को धारण करते हैं ।

बाघ, सिंह, हिरन, तेंदुआ, भालू, पक्षी, उल्लू और सियारों के रूप को अवलम्बन करते हैं ।

करोति चासरूपाणि धारयत्यपि पर्वतान्।
गोरूपश्च महादेवो हस्त्यश्वोष्ट्र खराकृतिः ॥ १४२ ॥
छागशार्दूलरूपश्च अनेकमृगरूपधृक्।
अण्डजानाञ्च दिव्यानां वपुर्धारयते भवः ॥ १४३ ॥
दण्डी छत्री च कुण्डी च द्विजानां धारणास्तथा।
षण्मुखो वै बहुमुखस्त्रिनेत्रो बहुशीर्षकः ॥ १४४ ॥
अनेककटिपादश्च अनेकोदरवक्त्रधृक्।
अनेकपाणिपार्श्वश्च अनेकगणसंवृतः ॥ १४५ ॥
ऋषिगन्धर्वरूपश्च सिद्धचारणरूपधृक्।
भस्मपाण्डुरगात्रश्च चन्द्रार्धकृतभूषणः ॥ १४६ ॥
अनेकराव संघुष्टश्चानेकस्तुतिसंस्तुतः।
सर्व भूतान्तकः शर्वः सर्वलोक प्रतिष्ठितः ॥ १४७ ॥
सर्वलोकान्तरात्मा च सर्वगः सर्ववाद्यपि।
सर्वत्र भगवान् ज्ञेयो हृदिस्थः सर्वदेहिनाम् ॥ १४८ ॥

वह हंस, कौआ, मोर, कृकलास, सारस, गिद्ध, चक्रवाक, स्वर्णबक बक आदि के रूपों को तथा पर्वतों को धारण किया करते हैं। महादे गऊ, हाथी, घोड़े, ऊँट और खर की आकृति का भी अवलम्बन करते हैं। वह बकरे और शार्दूल तथा अनेक प्रकार के मृगों का रूप धारण करते हैं। महेश्वर दिव्य अण्डजों की आकृति धारण करते हैं, तथा वह दण्डछत्र और कमंडलु धारण करने वाला और ब्राह्मणों का पोषण करने वाला है। वा षण्मुख और अनेक मुखवाले त्रिलोचन और अनेक सिरवाला है। वा अनेक कटि, चरण, उदर, मुख, हाथ, पार्श्व और अनेकों गणों से युक्त रहते हैं। वह ऋषि, गन्धर्व, सिद्ध और चारणों का रूप धारण किया करते हैं। उनका शरीर भस्म के द्वारा पाण्डुर वर्ण और अर्द्ध चन्द्र से विभूषित है। वह विविध स्वर से सन्तुष्ट और अनेक स्तोत्रों से स्तुति किये हुए हैं। वह सब जीवों के नाशक होकर सब लोकों में प्रतिष्ठित हैं।

सर्व स्वरूप, सब प्राणियों की अन्तरात्मा, सर्वव्यापी और सर्वभाषी है वह भगवान् सर्वत्र विद्यमान है और देहधारियों के हृदय में निवास कर रहा है (ऐसा जानना चाहिये)। जो लोग जिस विषय की अभिलाषा करके जिस निमित्त उसकी पूजा किया करते हैं वह देवेश महेश्वर उन सब

यो हि यं कामयेत् कामं यस्मिन्नर्थेऽर्च्यते पुनः ।
तत्सर्वं वेत्ति देवेशस्तं प्रपद्य यदीच्छसि ॥ १४९ ॥
नन्दते कुप्यते चापि तथा हुङ्कारयत्यपि ।
चक्री शूली गदापाणिर्मुसली खड्गपट्टिशी ॥ १५० ॥
भूधरो नागमौञ्जी च नागकुण्डलकुण्डली ।
नागयज्ञोपवीती च नागचर्मोत्तरच्छदः ॥ १५१ ॥
हसते गायते चैव नृत्यते च मनोहरम् ।
वादयत्यपि वाद्यानि विचित्राणि गणैर्युतः ॥ १५२ ॥
वल्गते जृंभते चैव रुदते रोदयत्यपि ।
उन्मत्तो मत्तरूपश्च भाषते चापि सुस्वरः १५३ ॥
अतीव हसते रौद्रस्त्रासयन् नयनैर्जनम् ।
जागर्ति चैव स्वपिति जृम्भते च यथासुखम् ॥ १५४ ॥
जपते जप्यते चैव तपते तप्यते पुनः ।
ददाति प्रति गृह्णाति युञ्जते ध्यायतेऽपि वा ॥ १५५ ॥
वेदी मध्ये तथा यूपे गोष्ठमध्ये हुताशने ।
दृश्यते ऽदृश्यते चापि बालो वृद्धो युवा तथा ॥ १५६ ॥

विषयों को जानता है। इसलिये यदि इच्छा हो तो तुम उसकी शरण जाओ। वह आनन्दित होता है कुपित भी होता है और हुँकार भी देता है। वह चक्र, शूल, गदा, मूसल, खड्ग, और पट्टिश धारण किया करता है। वह (पर्वत होके) पृथ्वी का धारण करने वाला, नाग की मखला, नाग कुण्डली का कुण्डल तथा सांपों का जनेऊ पहनता और नानाचर्म का वस्त्र रखता है। हँसता गाता विचित्र बाजों को बजाता हुआ मनोहर रीति से गणों के साथ मनोहर नृत्य करता है। वह बात करता, जमुहाई लेता, रोता और रुलाता है। वह उन्मत्त मस्त होकर उत्तम स्वर से वार्त्तालाप किया करता है। वह अत्यन्त भयानक हँसी हँसाता है नेत्रों से मनुष्यों को भी डराता है, जगाता है, सोता है और सुख पूर्वक जँभाई लेता है।

वह स्वयं जप करता है और सब लोग उसका जप करते हैं। वह स्वयं तप करता है और लोग उस के लिये तपस्या किया करते हैं। वह दान करता और प्रतिग्रह ग्रहण किया करता है, योग करता और ध्यान करता है। वेदी, यूप, गोशाला और अग्नि के मध्य में वह कभी बालक

क्रीडते ऋषिकन्याभि र्ऋषिपत्नीभिरेव च ।
ऊर्ध्वकेशो महाकेशो नग्नो विकृतलोचनः ॥ १५७ ॥
गौरः श्यामस्तथा कृष्णः पाण्डुरो धूम्रलोहितः ।
विकृताक्षो विशालाक्षो दिग्वासाः सर्ववासकः ॥ १५८ ॥
अरूपस्याद्य रूपस्य अतिरूपाद्यरूपिणः ।
अनाद्यन्तमजस्यान्तं वेत्स्यते कोऽस्य तत्वतः ॥ १५९ ॥
हृदि प्राणो मनो जीवो योगात्मा योगसंज्ञितः ।
ध्यानं तत्परमात्मा च भाव ग्राह्यो महेश्वरः ॥ १६० ॥
वादको गायनश्चैव सहस्रशतलोचनः ।
एकवक्त्रो द्विवक्त्रश्च त्रिवक्त्रोऽनेक वक्त्रकः ॥ १६१ ॥
तद्भक्तस्तद्गतो नित्यं तन्निष्ठस्तत्परायणः ।
भज पुत्र महादेवं ततः प्राप्स्यसि चेप्सितम् ॥ १६२ ॥

युवा और वृद्ध के रूप में दीख पड़ता और कभी अदृश्य हो जाता है। वही ऋषिकन्या और ऋषिपत्नियों के संग क्रीड़ा करता है। वह बड़े ऊर्द्ध केशवान दिगम्बर आर त्रिनेत्र है गौर, श्याम, कृष्ण, पाण्डुर, धूम्र, और लाल इन वर्णों से युक्त विकृताक्ष, विशालाक्ष, दिगम्बर और सर्वाम्बर अर्थात् सबको वस्त्र देने वाला है। अर्थात् आद्यरूपी, निष्कल मायावी, अतिरूप नाशकार्य के कारण आद्यरूप, हिरण्यगर्भ, अनादि, अनन्त, जन्म रहित, माया से रहित आदिरूप तथा माया सहित अनेक प्रकार के कार्यरूप रूपों वाले, निराकार, अनादि अनन्त अजन्म महेश्वर का अन्त यथार्थ रीति से कौन जान सकता है। जो हृदय में प्राण, मन, और जीवरूप अर्थात् अन्नमय प्राण में मनोमय और विज्ञानमय कोष रूप से वर्णित होता है जो योगात्मा तथा आनन्द मय है और योग संज्ञक योगी कहा जाता है। वह परम शुद्ध ध्यान में प्रबल परमात्मा महेश्वर सूक्ष्म मनोवृत्ति के द्वारा भी मालूम होने योग्य नहीं है वही वादक, गीत गानेवाला, असंख्य नेत्रोंवाला, एकमुख, दो मुख, तीन मुख और अनन्त मुख रखनेवाला है।

हे पुत्र ! तुम उसी के भक्त होकर उसी में चित्त लगाओ, उसी में निष्ठा रक्खो और उसी में रत होकर महादेव ही की आराधना करो तब तुम अभिलषित मनोरथों को प्राप्त करोगे। हे शत्रुनाशन ! माता के ऐसे वचन

जनन्या स्तद्वचः श्रुत्वा तदाप्रभृति शत्रुहन् ।
मम भक्तिर्महादेवे नैष्ठिकी समपद्यत ॥ १६३ ॥
ततोऽहं तप आस्थाय तोषयामास शङ्करम् ।
एकं वर्षसहस्रं तु वामाङ्गुष्ठाग्रधिष्ठितः ॥ १३४ ॥
एकं वर्षशतञ्चैव फलाहारस्ततोऽभवम् ।
द्वितीयं शीर्णपर्णाशी तृतीयं चाम्बुभोजनः ॥ १६५ ॥
शतानि सप्त चैवाहं वायुभक्षस्तदाभवम् ।
एवं वर्षसहस्रं तु दिव्यमाराधितो मया ॥ १६६ ॥
ततस्तुष्टो महादेवो सर्वलोकेश्वरः प्रभुः ।
एक भक्त इति ज्ञात्वा जिज्ञासां कुरुते तदा ॥ १६७ ॥
शक्ररूपं स कृत्वा तु सर्वैर्देवगणैर्वृतः ।
सहस्राक्षस्तदा भूत्वा वज्रपाणिर्महायशाः ॥ १६८ ॥
सुधावदातं रक्ताक्षं स्तब्धकर्णं महोत्कटम् ।
आवेष्ठितकरं घोरं चतुर्दंष्ट्रं महागजम् ॥ १६९ ॥
समास्थितः स भगवान् दीप्यमानः स्वतेजसा ।
आजगाम किरीटी तु हारकेयूरभूषितः ॥ १७० ॥
पांडुरेणातपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्द्धनि ।

समय से महादेवजी में मेरी निश्चल भक्ति उत्पन्न हुई और मैंने तपस्या करके महादेव को सन्तुष्ट किया। बायें अंगूठे के सहारे स्थित होकर एक हजार वर्ष बिताये। एक सौ वर्ष तक फल भोजन करके रहा। दूसरी वार एक सौ वर्ष तक सूखे पत्तों को खा के रहा। फिर एक सौ वर्ष तक जल पी के बिताया। अनन्तर सात सौ वर्ष तक वायु पी कर रहा। इसी प्रकार देव परिमाण से एक सहस्र वर्ष तक महेश्वर मेरे द्वारा पूजित हुये। अनन्तर सब लोकों के ईश्वर प्रभु महादेव प्रसन्न हुये उस समय उन्होंने मुझे अपना मुख्य भक्त समझ कर परीक्षा करने की इच्छा की। उन्होंने महायशस्वी वज्रधारी हजार नेत्र वाले सुधा की भांति श्वेतरूप, लालनेत्र, निश्चलकर्ण, महाउत्कट, विशाल भुजा वाले इन्द्र का रूप धर कर चार दांत वाले महामातङ्ग पर चढ़े हुए अपने तेज से प्रकाशमान होते हुए हार किरीट और कुण्डल विभूषित शरीर से सब देवताओं के साथ आगमन किया। उनके सिरपर श्वेत छत्र शोभित था। वह

सेव्यमानोऽप्सरोभिश्च दिव्यगन्धर्वनादितैः ॥ १७१ ॥
ततो मामाह देवेन्द्रस्तुष्टस्तेहं द्विजोत्तम ।
वरं वृणीष्व भक्तस्त्वं यत्ते मनसि वर्तते ॥ १७२ ॥
शक्रस्य तु वचः श्रुत्वा नाहं प्रीतमनाभवम् ।
अब्रवञ्च तदा कृष्ण देवराजमिदम्वचः ॥ १७३ ॥
नाहं त्वत्तो वरं काङ्क्षे नान्यस्मादपि दैवतात् ।
महादेवादृते सौम्य सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ १७४ ॥
सत्यं सत्यं हि नः शक्र वाक्यमेतत् सुनिश्चितम् ।
न यन्महेश्वरं मुक्त्वा कथान्या मम रोचते ॥ १७५ ॥

पशुपति वचनाद्भवामि सद्यः
क्रृमिरथवा तरुरप्यनेकशाखः ।
अपशुपतिवरप्रसादजा मे
त्रिभुवनराज्यविभूतिरप्यनिष्टा ॥ १७६ ॥

जन्मश्वपाकमध्येऽपि मेस्तु हरचरणवन्दनरतस्य ।
मानीश्वरभक्तो भवानि भवनेऽपि शक्रस्य ॥ १७७ ॥

दिव्य गन्धर्वों की संगीत ध्वनि से और अप्सराओं से सेवित थे । (पहुँचकर) देवराजरूपी भगवान् ने कहा हे द्विजोत्तम ! मैं तुम्हारे प्रसन्न हुआ हूं, तुम अपना अभीष्ट वर मांगो । इन्द्र का वचन सु मैं प्रसन्न चित्त नहीं हुआ । हे कृष्ण ! उस समय मैंने देवराज से वचन कहा—मैं तुमसे तथा महादेव के अतिरिक्त दूसरे किसी देव भी वर की अभिलाषा नहीं करता यही मेरा सत्य संकल्प है । हे श मेरा वह भलीभांति निश्चित वचन सत्य है क्योंकि महेश्वर के अतिरि किसी दूसरे वचन में भी रुचि नहीं होती ।

पशुपति के वचन के अनुसार मुझे उसी समय कृमि अथवा शाखायुक्त वृक्ष होना स्वीकार है परन्तु महादेव के अतिरिक्त मैं दूस वर वा कृपा से तीनों लोक के राज्य तथा ऐश्वर्य की भी इच्छा नहीं क शिव चरण में रत होकर मेरा चाण्डाल कुल में जन्म हो तौ भी अ परन्तु अपने ईश्वर महादेव की भक्ति बिना इन्द्र भवन में भी मेरा जन्म न

धाय्वम्बुजोऽपि सतो नरस्य दुःखक्षयः कुतस्तस्य ।
भवति हि सुरासुरगुरौ यस्य न विश्वेश्वरे भक्तिः ॥१७८॥
अलमन्याभिस्तेषां कथाभिरप्यन्यधर्मयुक्ताभिः ।
येषां न क्षणमपि रुचितो हरचरणस्मरण विच्छेदः ॥१७९॥
हरचरणनिरतमतिना भवितव्यमनार्जवं युगं प्राप्य ।
संसारभयं न भवति हरभक्तिरसायनं पीत्वा ॥ १८० ॥
दिवसं दिवसार्द्धं वा मुहूर्तं वा क्षणं लवम् ।
न ह्यलब्धप्रसादस्य भक्तिर्भवति शंकरे ॥ १८१ ॥
अपि कीटपतङ्गे वा भवेयं शङ्कराज्ञया ।
न तु शक्र त्वया दत्तं त्रैलोक्यमपि कामये ॥ १८२ ॥
श्वाऽपि महेश्वर वचनात् भवामि स हि नः परः कामः ।
त्रिदशगण राज्यमपि खलु नेच्छाम्यमहेश्वराज्ञप्तम् ॥१८३॥

न नाक पृष्ठं न च देवराज्यं
न ब्रह्मलोकं न च निष्कलत्वम् ।
न सर्वकालानखिलान् वृणोमि
हरस्य दासत्वमहं वृणोमि ॥ १८४ ॥

सुरासुर गुरु विश्वेश्वर में जिसकी भक्ति नहीं है उस पुरुष के वायु भक्षण वा जल पीकर रहने पर भी किस प्रकार उसका दुःख नष्ट होगा । जिसको शिव के चरणों के स्मरण का त्याग इस समय भी रुचिकर न हो उसे दूसरे वचन तथा अन्य धर्मयुक्त वाक्य से क्या प्रयोजन है ? क्रूर कलियुग के उपस्थित होने पर मनुष्यों को शिवचरण में सदा रत होना उचित है क्योंकि हरभक्ति रसायन को पीने से मनुष्य को संसार का भय नहीं होता । दिन, दिन का अर्धभाग, मुहूर्त्त, क्षण, और लवमात्र समय में भी जो शंकर के प्रसाद पाने में समर्थ नहीं हैं उसके मनमें भक्ति नहीं होती । हे देवराज ! महादेव की आज्ञानुसार चाहे कीट वा पतंग योनि में भलेही उत्पन्न होऊं परन्तु तुम्हारे दिये तीन लोकों की मैं कामना नहीं करता ।

महेश्वर के वचन से चाहे कुत्ता भले ही बनूं । परन्तु विना उनकी आज्ञा के देवताओं के भी राज्य को मैं नहीं चाहता । मैं स्वर्गलोक की

यावच्छशाङ्कधवलामलवद्धमौलि-
न प्रीयते पशुपतिर्भगवान्महेशः ।
तावज्जरामरणजन्मशताभिघातै-
दुंःखानि देवविहितानि समुद्वहामि ॥ १८५ ॥
दिवसकरशशांकवह्निदीप्तं
त्रिभुवनसारमसारमाद्यमेकम् ।
अजरममरमप्रसाद्यरुद्रं
जगति पुमानिह को लभेत शान्तिम् ॥ १८६
यदि नाम जन्मभूयो भवति मदीयैः पुनर्दोषैः ।
तस्मिन् तस्मिन् जन्मनि भवे भवेन्मेऽक्षया भक्तिः ॥ १८

शक्र उवाच ।

कः पुनर्भवने हेतुरीशे कारण कारणे ।
येन शर्वादृतेऽन्यस्मात् प्रसादं नाभिकाङ्क्षसि ॥ १८

अभिलाषा नहीं करता, देवराज्य की इच्छा नहीं करता, ब्रह्मलोक वाञ्छा नहीं है, निष्कलत्व को स्पृहा नहीं करता और समस्त का विषयों की भी कामना नहीं करता केवल हरि के दासत्व को चाहता जब तक चन्द्र के समान उज्ज्वल, अमल, बद्ध मौलि भगवान् मे प्रसन्न नहीं होते तब तक जरा मरण और सैकड़ों जन्मों के अभि से उत्पन्न होने वाले शरीर के सब दुःखों को सहता रहूँगा। सूर्य चन्द्र और अग्नि के द्वारा प्रकाशमान त्रिभुवन सारभूत और जिससे बढ़ सारभूत और कुछ भी नहीं है उस एक मात्र आदि पुरुष अजर अ रुद्रदेव को बिना प्रसन्न किये इस जगत् में कौन पुरुष शान्ति लाभ क में समर्थ होगा? मेरे दोष से यदि मेरा फिर जन्म हो तो उन जन्मों भी महादेव में मेरी अक्षयभक्ति उत्पन्न होवे। इन्द्र बोले उस का के भी कारण ईश्वर की सत्ता के विषय में तुमने कैसे निश्चय कर लि जो तुम महेश्वर के अतिरिक्त दूसरे किसी देवता की प्रसन्नता की इ नहीं करते हो।

उपमन्युरुवाच ।

सदसद्व्यक्तमव्यक्तं यमाहुर्ब्रह्मवादिनः ।
नित्यमेकमनेकञ्च वरं तस्माद्वृणीमहे ॥ १८६ ॥
अनादिमध्यपर्यन्तं ज्ञानैश्वर्यमचिन्तितम् ।
आत्मानं परमं यस्माद्वरं तस्माद्वृणीमहे ॥ १६० ॥
ऐश्वर्यं सकलं यस्मादनुत्पादित मव्ययम् ।
अबीजाद्बीजसंभूतं वरं तस्माद्वृणीमहे ॥ १६१ ॥
तपसःपरमं ज्योतिः तपस्तद्वृत्तिना परम् ।
यं ज्ञात्वा नानुशोचन्ति वरं तस्माद्वृणीमहे ॥ १६२॥
भूतभावनभावज्ञं सर्वभूताद् भावनम् ।
सर्वगं सर्वदं देवं पूजयामि पुरन्दर ॥ १६३ ॥
हेतुवादैर्विनिर्मुक्तं सांख्ययोगार्थदं परम् ।
यमुपासन्ति तत्त्वज्ञा वरं तस्माद्वृणीमहे ॥ १६४ ॥

उपमन्यु बोले ।

ब्रह्मवादी लोग जिसे सत् असत् व्यक्त और अव्यक्त तथा नित्य एक और अनेक रूपधारी कहते हैं; उसी परमेश्वर से मैं वर पाने की इच्छा करता हूं । जिसका आदि मध्य अन्त नहीं है, जो ज्ञान रूप ऐश्वर्यमय और अचिन्तित परमात्मा है, उसी से मैं वर पाने की इच्छा करता हूं । जिससे सब ऐश्वर्य उत्पन्न हुये हैं, जो अव्यय है, जिसका बीज नहीं है, और जिससे सब बीज उत्पन्न हुये हैं मैं उसी से वर पाने की इच्छा करता हूं । जो अन्धकार दूर करने वाला, परम प्रकाश और अपने में निष्ठावान लोगों के निमित्त परम तपस्वरूप है, जिसे जान लेने से पण्डित लोग निश्चिंत होजाते हैं उसी से मैं वर पाने की इच्छा करता हूं ।

हे पुरन्दर ! जो आकाश आदि पंच तत्त्वों और सब जीवों को उत्पन्न करता है और जो सबके अभिप्राय को जानता है, सर्वव्यापी और सब मनोरथों के देने वाले मैं उसी देवकी पूजा करता हूं । हे देवराज ! मैं उससे वर मांगता हूं जो कि युक्तियों से सिद्ध न होने वाला, सांख्य योग के आशयों का साक्षात्कार करने वाला, सब से परे है और

मघवन् मघवात्मानं यं वदन्ति सुरेश्वरम् ।
सर्वभूतगुरुं देवं वरं तस्माद्वृणीमहे ॥ १९५ ॥
यः पूर्वमसृजद्देवं ब्रह्माणं लोकभावनम् ।
अण्डमाकाशमापूर्य वरं तस्मा द्वृणीमहे ॥ १९६ ॥
अग्निरापोऽनिलः पृथ्वी खं बुद्धिश्च मनो महान् ।
स्रष्टा चैषां भवेद्योऽन्यो ब्रूहि कः परमेश्वरात् ॥ १९७ ॥
मनोमतिरहंकारस्तन्मात्राणीन्द्रियाणि च ।
ब्रूहि चैषां भवेच्छक्र कोऽन्योस्ति परमः शिवात् ॥ १९८ ॥
स्रष्टारं भवनस्येह वदन्ति हि पितामहम् ।
आराध्य स तु देवेशमश्नुते महतीं श्रियम् ॥ १९९ ॥
भगवत्युत्तमैश्वर्यं ब्रह्मविष्णुपुरोगमम् ।
विद्यते वै महादेवात् ब्रूहि कः परमेश्वरात् ॥ २०० ॥

तत्वज्ञानी पुरुष जिसकी उपासना करते हैं। हे इन्द्र जिस देवता को तुम्हारा अन्तरात्मा, देवताओं का ईश्वर जीवों का गुरु कहते हैं, मैं उसी से वर मांगता हूं। जिसने आकाश को अपनी सत्ता से व्याप्त कर ब्रह्माण्ड उत्पन्न करके पहिले सबके स्वामी प्रजापतिको उत्पन्न किया है मैं उसी से वर मांगत हूं।

अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी, आकाश, अहंकार, मन और महत्तत्व इन सबको परमेश्वर के अतिरिक्त दूसरा कौन पुरुष उत्पन्न कर सकता है। हे देवराज! बुद्धि तथा अहंकार तत्व, पञ्चतन्मात्रा और इन्द्रियाँ इन सब का उत्पत्तिस्थान शिव के अतिरिक्त दूसरा कौन हो सकता है। उसे तुम्हीं बताओ। इस लोक में सब कोई पितामह ब्रह्माजी को जगत्स्रष्टा कहा करते हैं परन्तु वह प्रजापति देवेश्वर महादेव को आराधना करके महान् ऐश्वर्य का भोग किया करता है। एक गुण वाले ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, देव के सृष्टि कर्त्ता तुरीय मूर्तिवाले भगवान का जो उत्तम ऐश्वर्य विद्यमान है वह भी उन्हें महादेव के द्वारा प्राप्त हुये हैं इस लिये कहो तो सही परमेश्वर से श्रेष्ठ और दूसरा कौन ईश्वर है।

दैत्यदानवमुख्यानामादीपत्यारिमर्दनात् ।
कोऽन्यः शक्नोति देवेशाद्दितेः सम्पादितुं सुतान् ॥ २०१ ॥

दिक्कालसूर्यतेजांसि ग्रहवाय्वम्बुतारकाः ।
विद्धि त्वेते महादेवात् ब्रूहि कः परमेश्वरात् ॥ २०२ ॥

अथोत्पत्तौ विनाशे वा यज्ञस्य त्रिपुरस्य वा ।
दैत्यदानवमुख्यानामाधिपत्यारिमर्दनः ॥ २०३ ॥

किञ्चात्र बहुभिः सूक्तैर्हेतुवादैः पुरन्दर ।
सहस्रनयनं दृष्ट्वा त्वामेव सुरसत्तम ॥ २०४ ॥

पूजितं सिद्धगन्धर्वैर्देवैश्च ऋषिभिस्तथा ।
देवदेवप्रसादेन तत्सर्वं कुशिकोत्तम ॥ २०५ ॥

अव्यक्तमुक्तकेशाय सर्वगस्येदमात्मकम् ।
चेतनाचेतनाद्येषु शक्र विद्धि महेश्वरात् ॥ २०६ ॥
भुवाद्येषु महान्तेषु लोकालोकान्तरेषु च ।
द्वीपस्थाने च मेरोश्च विभवेष्वन्तरेषु च ॥

दैत्यदानवों के बीच मुख्य २ पुरुषों को अधिपत्य प्रदान कर और शत्रुओं का मर्दन करके दितिनन्दन हिरण्यकश्यप प्रभृति को ऐश्वर्य युक्त करने में देवेश्वर महादेव के अतिरिक्त दूसरा कौन पुरुष समर्थ है । दिशा, काल, सूर्य की तेज, ग्रह, वायु, जल और नक्षत्र इन सबको महादेव से ही उत्पन्न जानकर आप बताइये कि इनसे परे कौन है ? हे सुरसत्तम ! पुरन्दर ! हे कौशिक जब कि महेश्वर महादेव की कृपा से सिद्ध गन्धर्व देवता और ऋषि लोग सभी सहस्राक्ष की पूजा किया करते हैं तब इस विषय में अधिक हेतुवाद का प्रयोजन क्या ? यह सब कार्य महादेव के ही कृपा से होरहा है । हे देवराज ! चेतन अचेतन सब पदार्थों में व्यापक ईश्वर का व्याप्य इदमात्मक सब वस्तुओं में दिखाई देता है । जो कोई जीव जो कुछ भोग्य वस्तु भोग करता है, वह सब वस्तु महेश्वरही से हुई जानो । हे भगवन् इन्द्र ! भू भुंवः स्वः महः प्रभृति सब लोकों,

भगवन् मघवन् देवं वदन्ते तत्वदर्शिनः ॥ २०७ ॥
यदि देवाऽसुराः शक्र पश्यन्त्यन्यां भवाकृतिम् ।
किं न गच्छन्ति शरणमर्दिताश्चासुरैः सुराः ॥ २०८ ॥
अभिघातेषु देवानां सयक्षोरगरक्षसाम् ।
परस्परविनाशेषु स्वस्थानैश्वर्यदो भवः ॥ २०९ ॥
अन्धकस्याथ शक्रस्य दुन्दुभिर्महिषस्य च ।
यक्षेन्द्र बलरक्षःसु निवातकवचेषु च ॥
वरदानावघाताय ब्रूहि कोऽन्यो महेश्वरात् ॥ २१० ॥
दिग्वासाः कीर्त्यते कोऽन्यो लोके कश्चोर्द्ध्व रेतसः ।
कस्य चार्द्धे स्थिता कान्ता अनङ्गः केन निर्जितः ॥ २११ ॥
ब्रूहीन्द्र परमं स्थानं कस्य देवैः प्रशस्यते ।
श्मशाने कस्य क्रीडार्थं नृत्ये वा कोऽभिभाषते ॥ २१२ ॥

लोकालोक पर्वत के भीतर दिव्य स्थानों, सुमेरु के बीच, द्वीपस्थानों और चन्द्र सूर्य आदि से युक्त सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में तत्वदर्शी पुरुष उस देवों के देव की वन्दना किया करते हैं। हे शक्र ! देवता और असुर लोग यदि महादेव के समान किसी दूसरी आकृति को देखते तो वे लोग तथा असुर कुल के द्वारा पीड़ित देवता लोग क्या उसकी शरण में न जाते ? यक्ष, राक्षस, सर्प और देवताओं के परस्पर विनाशकारी युद्धघात के समय महादेव ही यथायोग्य निजधाम स्वरूप ऐश्वर्य प्रदान किया करते हैं। भला कहो तो सही, अन्धक, शुभ, दुन्दुभी, महर्षि, यक्ष, इन्द्र, वल, राक्षस और निवात कवचों को वरदान देने तथा उनके नाश करने में महेश्वर के सिवाय दूसरा कौन समर्थ हो सकता है।

लोक में दिगम्बर कौन कहा जाता और उर्ध्व रेता कौन है ? किसके अर्द्धाङ्ग में कान्ता निवास करती है। किस पुरुष ने कामदेव को भस्म किया था ? हे देवराज ! कहो तो सही, किसके परम स्थान की देवता लोग प्रशंसा किया करते हैं। श्मशान में कौन क्रीड़ा करता है

कस्यैश्वर्यं समानं वा भूतैः को वापि क्रीडते ।
कस्य तुल्यबला देव गणाश्चैश्वर्य दर्पिताः ॥ २१३ ॥
घुष्यते ह्यचलं स्थानं कस्य त्रैलोक्यपूजितम् ।
वर्षते तपते कोऽन्यो ज्वलते तेजसा च कः ॥ २१४ ॥
कस्माच्चौषधिसंपत्तिः को वा धारयते वसु ।
प्रकामं क्रीडते को वा त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ २१५ ॥
ज्ञानसिद्धिक्रियायोगैः सेव्यमानश्च योगिभिः ।
ऋषिगन्धर्वसिद्धैश्च कारणं विद्धि तं हरे ॥ २१६ ॥
कर्मयोग क्रियायोगैः सेव्यमानः सुरासुरैः ।
नित्यं कर्मफलैर्हीनं तमहं कारणं वदे ॥ २१७ ॥
स्थूल सूक्ष्ममनौपम्यमग्राह्यं गुणगोचरम् ।
गुणहीनं गुणाध्यक्षं परं माहेश्वरं पदम् ॥ २१८ ॥
स्थित्युत्पत्त्योः कारणञ्च लोकालोकान्तकारणम् ।
भूतं भव्यं भविष्यं च जनकं सर्वकारणम् ॥ २१९ ॥
अक्षरं क्षरमव्यक्तं विद्याविद्ये कृताकृते ।

नृत्य में किसकी प्रशंसा की जाती है ? किसका ऐश्वर्य उसके समान है ? कौन पुरुष भूतों के संग क्रीडा करता है । देवता लोग किसके बल से बलवान होकर ऐश्वर्य का अभिमान किया करते हैं ? किसका अचल धाम तीनों लोकों से पूजित और प्रसिद्ध है ? उसके अतिरिक्त दूसरा कौन पुरुष जल वर्षाता है ? कौन तेज से प्रज्वलित होता है ? किसके द्वारा औषधि रूप सम्पत्ति उत्पन्न हुआ करती हैं ? कौन वसु को धारण करता है । तीनों लोकों में कौन पुरुष जड और चेतन के साथ विहार करता है ? हे देवराज ! ऋषि, गन्धर्व, सिद्ध और योगी लोग ज्ञान सिद्धि और क्रिया के सहारे जिसकी सेवा किया करते हैं, उसे ही कारण जानो ।

देवताओं और असुरों से जो पुरुष कर्मयोग तथा क्रिया योग द्वारा पूजा जाता है उस कर्मफल रहित शिव को ही मैं कारण अर्थात् संसार का उत्पन्नकर्त्ता कहता हूं । स्थूल, सूक्ष्म, अनुपम, अज्ञेय, गुणगोचर, गुणहीन और गुणाध्यक्ष महेश्वर पदही परमपद है । जो स्थिति और उत्पत्ति का कारण

५

धर्माधर्मौ यतः शक्र तमहं कारणं वदे ॥ २२० ॥
तस्माद्वरमहं काङ्क्षे निधनं वापि कौशिक ।
गच्छ वा तिष्ठ वा शक्र यथेष्टं बलसूदन ॥ २२१ ॥
काममेषवरो मेऽस्तु शापो वाथ महेश्वरात् ।
न चान्यां देवतां काङ्क्षे सर्वकालफलामपि ॥ २२२ ॥
एव मुक्त्वा तु देवेन्द्रं दुःखादाकुलितेन्द्रियः ।
न प्रसीदति मे देवः किमेतदिति चिन्तयन् ॥ २२३ ॥
अथापश्यं क्षणेनैव तमेवैरावतं पुनः ।
हंसकुन्देन्दुसदृशं मृणालरजतप्रभम् ॥ २२४ ॥
वृषरूपधरं साक्षात् क्षीरोदमिव सागरम् ।
कृष्णपुच्छं महाकायं मधुपिङ्गललोचनम् ॥ २२५ ॥
वज्रसारमयैः शृङ्गैर्निष्टप्तकनकप्रभैः ।
सुतीक्ष्णैर्मृदुरक्ताग्रैरुत्किरन्तमिवावनीम् ॥ २२६ ॥
जाम्बूनदेन दाम्ना च सर्वतः समलंकृतम् ।
सुवक्त्रखुरनासञ्च सुकर्णं सुकटीतटम् ॥ २२७ ॥

है, जो जीव रूप अक्षर, शरीर रूप क्षर और ईश्वर रूप अव्यक्त है, जिस विद्या, अविद्या, कर्म, अकर्म, धर्म और अधर्म प्रवर्त्तित होते हैं उसी मैं सबकी उत्पत्ति का कारण कहता हूं ।

हे बल के मारने वाले सुरराज ! मैं उसी महेश्वर से वर अथवा श चाहता हूं । तुम जाओ या इच्छा हो तो यहीं रहो । मेरी अभिलाषा है कि मुझे वर या शाप जो भी मिले महेश्वर के ही द्वारा मि सब प्रकार की इच्छाओं का फल देने वाला होने पर भी किसी दू देवता को मैं नहीं चाहता । देवराज से ऐसा कह कर मैं दुःख से व्याकु चिन्ता करने लगा कि महादेव किस लिये मुझ पर प्रसन्न नहीं होते हैं इसी चिन्ता में क्षण भर रहने के बाद मैंने फिर उसी ऐरावत को हंस कु और चन्द्रमा कमलकी डंडी और चांदी के समान प्रकाशमान साक्ष क्षीर सागर की भांति वृष रूपधारी देखा । उस महाकाय वृष की पूं कृष्ण वर्ण थी, नेत्र मधु को भांति पिंगल वर्ण थे । वह वृषभ तपाये हु साने के समान प्रकाशमान उत्तम तीक्ष्ण मृदु वज्र सारमय लाल नेत्र वाले सींगों से मानो पृथिवी को विदीर्ण करता

सुपार्श्वं विपुलस्कन्धं सुरूपं चारुदर्शनम् ।
ककुदं तस्य चाभाति स्कन्धमापूर्य धिष्ठितम् ॥ २२८ ॥
तुषारगिरिकूटाभं सिताभ्रशिखरोपमम् ।
तमास्थितश्च भगवान् देवदेवः सहोमया ॥ २२९ ॥
अशोभत महादेवः पौर्णमास्यामिवोडुराट् ।
तस्य तेजो भवो वह्निः समेघस्तनयित्नुमान् ॥ २३० ॥
सहस्रमिव सूर्य्याणां सर्वमापूर्य धिष्ठितम् ।
ऐश्वरन्तु तदा तेजः संवर्तक इवानलः ।
युगान्ते सर्वभूतानां दिधक्षुरिव चोद्यतः ॥ २३१ ॥
तेजसा तु तदा व्याप्तं दुर्निरीक्षं समन्ततः ।
पुनरुद्विग्नहृदयः किमेतदिति चिंतयन् ॥ २३२ ॥
मुहूर्तमिव तत्तेजो व्याप्तं सर्वा दिशो दश ।
प्रशान्तं दिक्षु सर्वासु देवदेवस्य मायया ॥ २३३ ॥
अथापश्यं स्थितं स्थाणुं भगवन्तं महेश्वरम् ।
सौरभेय गतं सौम्यं विधूममिव पावकम् ॥ २३४ ॥

वह वृष सुवर्ण के बने हुए डोरी से सब प्रकार अलंकृत था। उसके मुख, कान, नासिका कटि और खुर अत्यन्त सुन्दर थे। कन्धा विशाल था। उस सुन्दर मनोहर वृषभ का ककुद स्कन्धों कोढके हुए था। देवों के देव भगवान् महदेव—उमादेवी के सहित उस सफेद बादल के शिखर तथा बरफ के पर्वत की चोटी के समान बैलपर चढ़े हुए पौर्णमासी की रात्रि के चन्द्रमा की भांति शोभा दे रहे हैं। उनके शरीर का तेज, बादल युक्त अग्नि तथा हजार सूर्य के समान आभा सब दिशाओं में व्याप्त हो रही थी। उस समय ईश्वर का तेज प्रलयकाल के सम्वर्त्तक नामक अग्नि की भांति मानो सब भूतों को जलाने का इच्छुक होकर उदित हुआ। उस समय दशों दिशाएँ उसके तेज से व्याप्त होकर दुर्दश्य (कठिनता से देखने योग्य) हो गईं। मैं उद्विग्न चित्त होकर चिन्ता करने लगा कि यह क्या है? इतने ही समय में जो एक मुहूर्त तक तेज दशों दिशाओं में फैला रहा था, महादेव की माया के प्रभाव से सब दिशाओं में शान्त हो गया।

सहितं चारु सर्वाङ्ग्या पार्वत्या परमेश्वरम् ।
नीलकण्ठं महात्मानमसक्तं तेजसां निधिम् ॥
अष्टादशभुजं स्थाणुं सर्वाभरणभूषितम् । ॥ २३५ ॥

शुक्लाम्बरधरं देवं शुक्लमाल्यानुलेपनम् ।
शुक्लध्वजमनाधृश्यं शुक्लयज्ञोपवीतिनम् ॥ २३६ ॥

गायद्भिर्नृत्यमानैश्च वादयद्भिश्च सर्वशः ।
वृतं पार्श्वचरैर्दिव्यैरात्मतुल्यपराक्रमैः ॥ २३७ ॥

बालेन्दुमुकुटं पाण्डुं शरच्चन्द्रमिवोदितम् ।
त्रिभिर्नेत्रैः कृतोद्योतं त्रिभिः सूर्यैरिवोदितैः ॥ २३८ ॥

अशोभत च देवस्य माला गात्रे सितप्रभे ।
जातरूपमयैः पद्मैर्ग्रथिता रत्नभूषिता ॥ २३९ ॥

मूर्तिमन्ति तथास्त्राणि सर्वतेजोमयानि च ।
मया दृष्टानि गोविन्द भवस्यामिततेजसः ॥ २४० ॥

इन्द्रायुधसवर्णाभं धनुस्तस्य महात्मनः ।
पिनाकमिति यत् ख्यातं स च वै पन्नगो महान् ॥ २४१ ॥

इसके बाद मैंने धूम रहित अग्नि समान, सौम्यरूप, सुन्दरसर्वाङ्ग पार्वती के सहित सौरभेय बैलपर सवार नीलकण्ठ, महानुभाव, अस तेज के निधि, अष्टादशभुजा धारी, सब आभूषणों से भूषित, सफेद व श्वेत माला, सफेद ध्वजा, और शुक्ल यज्ञोपवीत धारण किये हुए, दुरा स्थाणु भगवान् महेश्वर, परमेश्वर का दर्शन किया। वह अपने सम पराक्रम वाले, गाते बजाते और नाचते हुए दिव्य अनुचरों से घिरे हुए बाल चन्द्रमारूप मुकुट वाले पाण्डुरवर्ण देव मानो शरच्चन्द्र की भांति उ हुए। तीन उदित सूर्यों की भांति उनके तीनों नेत्र प्रकाशमान थे उसदेव के श्वेत प्रभायुक्त शरीर में सुवर्ण मय पद्म के द्वारा ग्र रत्नभूषित माला शोभा दे रही थी। हे गोविन्द ! मैंने अमित तेज महेश्वर के सर्वतेजोमय मूर्तिमान् अस्त्रोंका अवलोकन किया। उस महात्म का इन्द्रधनुष के समान वर्ण वाला धनुष जो पिनाक नाम से विख्यात बहुत बड़े सर्प के सदृश दिखाई देता था।

सप्तशीर्षो महाकायस्तीक्ष्णदंष्ट्रो विषोल्वणः ।
ज्यावेष्टित महाग्रीवः स्थितः पुरुष विग्रहः ॥ २४२ ॥
शरश्च सूर्यसंकाशः कालानलसमद्युतिः ।
यत्तदस्त्रं महाघोरं दिव्यं पाशुपतं महत् ॥ २४३ ॥
अद्वितीयमनिर्देश्यं सर्वभूतभयावहम् ।
सस्फुलिंगं महाकायं विसृजन्तमिवानलम् ॥ २४४ ॥
एकपादं महादंष्ट्रं सहस्रशिरसोदरम् ।
सहस्रभुजजिह्वाक्षमुद्गिरन्तमिवानलम् ॥ २४५ ॥
ब्राह्मान्नारायणादैन्द्रादाग्नेयादपि वारुणात् ।
यद्विशिष्टं महाबाहो सर्वशस्त्रविघातनम् ॥ २४६ ॥
येन तत्त्रिपुरं दग्ध्वा क्षणाद्भस्मीकृतं पुरा ।
शरेणैकेन गोविन्द महादेवेन लीलया ॥ २४७ ॥
निर्ददाह जगत् कृत्स्नं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
महेश्वरभुजोत्सृष्टं निमेषार्द्धान्न संशयः ॥ २४८ ॥

वह सात शिर वाला, महाकाय तीक्ष्ण विषैली दाढवाला, धनुप की प्रत्यंचा से बँधा हुआ बड़ी ग्रीवा वाले पुरुष के रूप में था साथही प्रलयकाल की अग्नि तथा सूर्य के समान प्रकाशमान बाणका निरीक्षण किया जिस का नाम दिव्य और महान् पाशुपत अस्त्र है। वह अस्त्र अद्वितीय, अनिर्देश्य सब जीवों के लिये भयकारी और महाकाय था तथा मानो अङ्गारों के सहित अग्नि विसर्जन कर रहा था। वह एक चरण वाला कराल दंष्ट्र सहस्र उदर, सहस्र शिर, सहस्र जिह्वा और सहस्र नेत्र वाले रूप से आग उगल रहा था।

हे महाबाहो ! वह ब्रह्मास्त्र, नारायणास्त्र, इन्द्रास्त्र, आग्नेयास्त्र, और वरुणास्त्र ऐन्द्रेय, आग्नेय, और बारुण अस्त्र से श्रेष्ठ और सर्व शस्त्रों का नाश करने वाला था। हे गोविन्द ! महादेव ने लीला क्रम से एकमात्र जिस बाण के सहारे उस त्रिपुर को एक क्षण में जलाकर भस्म कर दिया था वही अस्त्र यदि महादेव के हाथ से छूटे तो आधे पल में चराचर सहित तीनों लोकों को निःसन्देह भस्म करे। इस लोक में ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओं में से कोई भी उससे अवध्य नहीं है। हे तात ! मैंने उस आश्चर्य कारक और अद्भुत अस्त्र को देखा था।

नावध्यो यस्य लोकेऽस्मिन् ब्रह्मविष्णुसुरेष्वपि ।
तदहं दृष्टवांस्तात आश्चर्याद्भुतमुत्तमम् ॥ २४९ ॥
गुह्यमस्त्रं परश्चान्यत्तत्तुल्यमधिकं हि वा ।
यत्तच्छूलमितिख्यातं सर्वलोकेषु शूलिनः ॥ २५० ॥
दारयेद्यां महीं कृत्स्नां शोषयेद्वा महोदधिम् ।
संहरेद्वा जगत् कृत्स्नं विसृष्टं शूलपाणिना ॥ २५१ ॥
यौवनाश्वो हतो येन मान्धाता सबलः पुरा ।
चक्रवर्ती महातेजास्त्रिलोकविजयी नृपः ॥ २५२ ॥
महाबलो महावीर्यः शक्रतुल्यपराक्रमः ।
करस्थेनैव गोविन्द लवणस्येह राक्षसः ॥ २५३ ॥
तच्छूलमतितीक्ष्णाग्रं सुभीमं लोमहर्षणम् ।
त्रिशिखां भ्रुकुटीं कृत्वा तर्जमानमिवस्थितम् ॥ २५४ ॥
विधूमं सार्चिषं कृष्ण कालसूर्यमिवोदितम् ।
सर्पहस्तमनिर्देश्यं पाशहस्तमिवान्तकम् ॥ २५५ ॥
दृष्टवानस्मि गोविन्द तदस्त्रं रुद्रसन्निधौ ।
परशुस्तीक्ष्ण धारश्च दत्तो रामस्य यः पुरा ॥ २५६ ॥

उसके समान वा उससे श्रेष्ठ एक दूसरा परम अस्त्र भी देखा जो सब लोकों में महादेव के त्रिशूल नामसे प्रसिद्ध है । वह महादेव के हाथ से छूटने पर स्वर्ग तथा समस्त पृथ्वी मण्डल को फाड़कर समुद्र का शोषण और समस्त जगत् का नाश कर सकता है। पहिले समय में जिस त्रिशूल के लवण राक्षस के हाथ में रहने पर यौवनाश्व और त्रिलोक-विजयी महातेजस्वी बलवान् इन्द्र के समान पराक्रमी चक्रवर्ती राजा मान्धाता सेना के सहित मारे गये थे । अत्यन्त तीक्ष्ण धार वाला भयंकर और रोमांचकारी वह त्रिशूल भृकुटी का तीन शिखावाली करके तर्जन करता था । हे कृष्ण ! प्रलय काल के सूर्य की भांति उदित उस विधूम अर्चियुक्त अनिर्देश्य पाशधारी अन्तक समान स्वयं उस अस्त्र को मैंने रुद्र के निकट देखा ।

इसके अतिरिक्त हे गोविन्द ! पहिले महादेव ने प्रसन्न हो परशुराम को क्षत्रियों का नाशक तीक्ष्ण धारवाला परशु प्रदान किया था । जिसके द्वारा महा संग्राम में चक्रवर्ती राजा कार्त्तवीर्य मारा गया था उसे भी

महादेवेन तुष्टेन क्षत्रियाणां क्षयंकरः ।
कार्त्तवीर्यो हतो येन चक्रवर्ती महामृधे ॥ २५७ ॥
त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवी येन निःक्षत्रिया कृता ।
जामदग्न्येन गोविन्द रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥ २५८ ॥
दीप्तधारः सुरौद्रास्यः सर्पकण्ठाग्रधिष्ठितः ।
अभवच्छूलिनोऽभ्याशे दीप्तवह्निशिखोपमः ॥ २५९ ॥
असङ्ख्येयानि चास्त्राणि तस्य दिव्यानि धीमतः ।
प्राधान्यतो मयैतानि कीर्तितानि तवानघ ॥ २६० ॥
सव्यदेशे तु देवस्य ब्रह्मा लोकपितामहः ।
दिव्यं विमानमास्थाय हंसयुक्तं मनोजवम् ॥ २६१ ॥
वामपार्श्वगतश्चापि तथा नारायणः स्थितः ।
वैनतेयं समारुह्य शङ्खचक्रगदाधरः ॥ २६२ ॥
स्कन्दो मयूरमास्थाय स्थितो देव्याः समीपतः ।
शक्तिघण्टे समादाय द्वितीय इव पावकः ॥ २६३ ॥
पुरस्ताच्चैव देवस्य नन्दिं पश्याम्यवस्थितम् ।
शूलं विष्टभ्य तिष्ठन्तं द्वितीयमिव शङ्करम् ॥ २६४ ॥

मैंने उनके निकट देखा । हे गोविन्द ! अक्लिष्ट कर्मा जमदग्नि के पुत्र राम ने जिसके द्वारा पृथिवी को इक्कीस बार निःक्षत्रिय किया था वह तीक्ष्ण धारवाला, रौद्रमुख, कण्ठाग्र में सर्प से लिपटा हुआ, जलती हुई शिखा के समान परशु महादेव के समीप था । हे अनघ ! उस धीमान् के निकट और भी अगणित अस्त्र थे । मैंने तुमसे इन तीन प्रधान शस्त्रों का वर्णन किया है । उस देव के दाहिनी ओर सब लोकों के पितामह ब्रह्मा, हंस के साथ मन की गति के समान तेज चलने वाले दिव्य विमान में स्थित थे । बाँईं ओर शङ्ख चक्र गदाधारी नारायण गरुड़ पर विराजमान थे ।

देवी के निकट द्वितीय अग्नि के समान स्कन्द (स्वामी कार्तिकेय) शक्ति और घण्टा धारण करके मयूर पर निवास करते थे । महादेव के सन्मुख द्वितीय शङ्कर की भाँति शूल धारण करके खड़े हुए नन्दी को देखा । स्वायम्भुव आदि मुनि, भृगु आदि ऋषि और इन्द्र आदि सब देवता उस स्थान में उपस्थित थे ।

स्वायम्भुवाद्या मुनयो भृग्वाद्याश्चर्षयस्तथा ।
शक्राद्या देवताश्चैव सर्व एव समभ्ययुः ॥ २६५ ॥
सर्वभूतगणाश्चैव मातरो विविधाः स्थिताः ।
तेऽभिवाद्य महात्मानं परिवार्य्य समन्ततः ॥ २६६ ॥
अस्तुवन् विविधैः स्तोत्रैर्महादेवं सुरास्तदा ।
ब्रह्मा भवं तदा ऽस्तौषीद्रथन्तरमुदीरयन् ॥ २६७ ॥
ज्येष्ठ साम्ना च देवेशं जगौ नारायणस्तदा ।
गृणन् ब्रह्मपरं शक्रः शतरुद्रियमुत्तमम् ॥ २६८ ॥
ब्रह्मानारायणश्चैव देवराजश्च कौशिकः ।
अशोभन्त महात्मानस्त्रयस्त्रय इवाग्नयः ॥ २६९ ॥
तेषां मध्यगतो देवो रराज भगवाञ्छिवः ।
शरदभ्र विनिर्मुक्तः परिधिस्थ इवांशुमान् ॥ २७० ॥
अयुतानि च चन्द्रार्कानपश्यं दिवि केशव ।
ततोऽहमस्तुवं देवं विश्वस्य जगतः पतिम् ॥ २७१ ॥

उपमन्युरुवाच ।

ॐ नमो देवाधिदेवाय महादेवाय वै नमः ।

समस्त भूत और विविध मातृकाएँ उस महात्मा को सब प्रकार से घेर कर और प्रणाम करके खड़ी थीं। देवताओं ने उस समय विविध स्तोत्रों से महादेव की स्तुति की। तब ब्रह्मा जी सामवेद की रथन्तर नाम ऋचा का पाठ करते हुए महेश्वर की स्तुति करने लगे। नारायण ने देवेश्वर को प्रसन्न करने के लिये ज्येष्ठ साम मंत्र का गान किया। देवराज इन्द्र ने उत्तम शतरुद्रि का पाठ करते हुए परब्रह्म की स्तुति की। ब्रह्मा, नारायण और देवराज इन्द्र ये तीनों महानुभाव तीनों अग्नि की भांति शोभित हुए। इनके बीच में देवों के देव भगवान् महेश्वर शरद काल के बादलों से रहित आकाश में स्थित सूर्य की भाँति विराजमान थे।

हे केशव ! उस समय मैंने आकाशमण्डल में दश हजार चन्द्रमा और सूर्य देखे। और तब मैं समस्त जगत के प्रभु महादेव की स्तुतिकरने में लगा।

उपमन्यु बोले:—तुम देवादिदेव हो इसलिये तुम्हें नमस्कार है।

शक्र रूपाय शक्राय शक्रवेशधराय च ॥ २७२ ॥
नमस्ते वज्रहस्ताय पिङ्गलायारुणाय च ।
पिनाक पाणये नित्यं शङ्खशूलधराय च ॥ २७३ ॥
नमस्ते कृष्णवासाय कृष्णकुञ्चितमूर्द्धजे ।
कृष्णाजिनोत्तरीयाय कृष्णस्वभिरताय च ॥ २७४ ॥
शुक्लवर्णाय शुक्लाय शुक्लाम्बरधराय च ।
शुक्लभस्मावलिप्ताय शुक्लकर्मरताय च ॥ २७५ ॥
नमोऽस्तु रक्तवर्णाय रक्ताम्बरधराय च ।
रक्तध्वजपताकाय रक्तस्रगनुलेपने ॥ २७६ ॥
नमोऽस्तु पीतवर्णाय पीताम्बरधराय च ।
पीतध्वजपताकाय पीतस्रगनुलेपिने ॥
नमोऽस्तूच्छ्रितछत्राय किरीटवरधारिणे ॥ २७७ ॥
अर्धहारार्द्धकेयूर अर्धकुण्डलकर्णिने ।
नमः पवनवेगाय नमो देवाय वै नमः ॥ २७८ ॥
सुरेन्द्राय मुनीन्द्राय महेन्द्राय नमोऽस्तु ते ।
नमः पद्मार्द्धमालाय उत्पलैर्मिश्रिताय च ॥ २७९ ॥
अर्द्धचन्दनलिप्ताय अर्द्धस्रगनुलेपिने ॥ २८० ॥

तुम इन्द्ररूप इन्द्र, इन्द्रवेषधारी, महादेव हो इस से तुम्हें प्रणाम है तुम कृष्णवस्त्रधारी, कृष्ण, कुञ्चितकेश, कृष्णमृगचर्म का वस्त्र धारण करने वाले और तुम वज्रहस्त हो, पिंगल हो, अरुण हो, पिनाकपाणि शंख त्रिशूल धारी और नित्य हो इससे तुम्हें प्रणाम है, कृष्ण में रत हो इस से तुम्हें नमस्कार है। शुक्लवर्ण, शुक्लाम्बरधर, श्वेत भस्मधारी और शुक्लकर्म में रत हो इस से तुम्हें प्रणाम है। तुम रक्तवर्ण रक्ताम्बरधारी, रक्तध्वजा पताका, और लाल मालाधारी हो इस से तुम्हें नमस्कार है। तुम पीताम्बर-धारी, पीतवर्ण, ध्वजापताकायुक्त और पीली माला धारण करने वाले हो इसलिये तुम्हें प्रणाम है। तुम विशाल छत्र और किरीट सुन्दर धारी अर्धहार अर्धकेयूर और अर्ध कुण्डल धारी हो इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम्हीं वायुवेग हो इसलिये तुम्हें नमस्कार है। हे देव! तुम्हें नमस्कार है। तुम सुरेन्द्र, मुनीन्द्र और महेन्द्र हो इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम उत्पल मिश्रित पद्मार्धमाला धारी हो इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम्हारा

नम आदित्यवर्णाय आदित्यप्रतिमाय च ।
नम आदित्यवक्त्राय आदित्यनयनाय च ॥ २८१ ॥
नमः सोमाय सौम्याय सौम्यचक्रधराय च ।
सौम्यरूपाय मुख्याय सौम्यदंष्ट्राविभूषिणे ॥ २८२ ॥
नमः श्यामाय गौराय अर्द्धपीतार्द्धपाण्डवे ।
नारीनरशरीराय स्त्रीपुंसाय नमोऽस्तु ते ॥ २८३ ॥
नमो वृषभवाहाय गजेन्द्रगमनाय च ।
दुर्गमाय नमस्तुभ्यमगम्यगमनाय च ॥
नमोऽस्तु गणगीताय गणवृन्दरताय च ।
गणानुजातमार्गाय गणनित्यव्रताय च ॥ २८४ ॥
नमः श्वेताभ्रवर्णाय सन्ध्यारागप्रभाय च ।
अनुद्दिष्टाभिधानाय स्वरूपाय नमोऽस्तु ते ॥
नमोरक्ताग्रवासाय रक्तसूत्रधराय च ॥ २८५ ॥
रक्तमालाविचित्राय रक्ताम्बरधराय च ।
मणिभूषितमूर्धाय नमश्चन्द्रार्द्धभूषिणे ॥ २८६ ॥
विचित्रमणिमूर्धाय कुसुमाष्टधराय च ।

आधाशरीर चंदन से और आधा मालाओं से शोभित है आदित्य वर्ण आदित्य प्रतीष आदित्य मुख और आदित्य नयन हो इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम सोम, सौम्य, सौम्यचक्रधर, सौम्यरूप, सौम्यदन्त विभूषित हो इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम श्याम गौर अर्धपीत और अर्ध पाण्डुवर्ण हो इससे तुम्हें प्रणाम है। नरनारीरूप शरीर और स्त्रीपुरुष स्वरूप हो इससे तुम्हें प्रणाम है।

तुम वृषभ वाहन गजेन्द्र गमन हो स्वयं दुष्प्राप्य हो परन्तु तुम्हारे लिये कोई भी स्थान अगम्य नहीं है इससे तुम्हें प्रणाम है। गण तुम्हारे गुण गाते और अनुगमन करते हैं और तुम गणोपर प्रसन्न रहते हो और उनके व्रत स्वरूप हो इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम श्वेत बादल और सन्ध्या की लाली के समान वर्ण वाले हो तथा अनुद्दिष्टाभिधान अर्थात् नाम निर्देश से अवर्णनीय हो इससे तुम्हें प्रणाम है। तुम रक्ताग्रवास रक्तसूत्रधर लाल माला विचित्र रक्ताम्बर धारी मणि भूपित मूर्धा और अर्ध चन्द्र भूपित हो इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम विचित्र मणि

नमोऽग्निमुखनेत्राय सहस्रशशिलोचने ॥ २८७ ॥
अग्निरूपाय कान्ताय नमोऽस्तु ग्रहणाय च ।
खचराय नमस्तुभ्यं गोचराभिरताय च ॥ २८७ ॥
भूचराय भुवनाय अनन्ताय शिवाय च ।
नमो दिग्वाससे नित्यमधिवाससुवाससे ॥ २८८ ॥
नमो जगन्निवासाय प्रतिपत्ती सुखाय च ।
नित्यमुद्धद्धमुकुटे महाकेयूरधारिणे ॥ २८९ ॥
सर्पकण्ठोपहाराय विचित्राभरणाय च ।
नमस्त्रिनेत्रनेत्राय सहस्रशतलोचेन ॥ २९० ॥
स्त्रीपुंसाय नपुंसाय नमः सांख्याय योगिने ।
शंवोरभिस्रवन्ताय अथर्वाय नमो नमः ॥ २९१ ॥
नमः सर्वार्तिनाशाय नमः शोकहराय च ।
नमो मेघनिनादाय वहुमाया धराय च ॥ २९२ ॥
वीजक्षेत्राभिपालाय स्रष्टाराय नमो नमः ।
नमः सर्वसुरेशाय विश्वेशाय नमो नमः ॥ २९३ ॥

नमस्कार है । तुम सब देवताओं के स्वामी और विश्वेश्वर हो इससे तुम्हैं मण्डित मस्तक पर अष्ट कुसुमधारी, अग्नि मुख, अग्नि नेत्र और सहस्र शशि नेत्र हो इससे तुम्हें प्रणाम है । तुम अग्निमुख, अग्निरूपी, अग्निनेत्र, मनोहरमूर्त्ति और दुष्प्राप्य हो; इससे तुम्हें नमस्कार है । तुम शेखर और गोचराभिरत हो इससे तुम्हें नमस्कार है । तुम भूचर, भुवन, अनन्त, शिव, दिगम्बर, पुरुषादिगन्ध-वासित और उत्तम गन्ध धारी हो इससे तुम्हें प्रणाम है ।

तुम जगन्निवास ज्ञान और सुख स्वरूप हो तुम सदा सिर पर मुकुट हाथ में केयूरधारी और गले में सर्पों का हार धारण करते हो और विचित्र आभूषणों से भूषित रहते हो (लोक यात्रा निर्वाहक) अग्निसूर्यचन्द्र रूप तीनों नेत्रों से त्रिनेत्र और सहस्रशत लोचन हो इससे तुम्हें नमस्कार है । तुम शम्भुसंज्ञक यज्ञ करने वाले देवताओं के प्रसाद स्वरूप हो तुम सब दुख और शोक हरने वाले हो इससे तुम्हें नमस्कार है । तुम वीजपाल क्षेत्रपाल और सृष्टि कर्ता हो इससे तुम्हें

नमः पवनवेगाय नमः पवनरूपिणे ।
नमः काञ्चनमालाय गिरिमालाय वै नमः ॥ २६४ ॥
नमः सुरारिमालाय चण्डवेगाय वै नमः ।
ब्रह्मशिरोपहर्ताय महिषघ्नाय वै नमः ॥ २६५ ॥
नमस्त्रिरूपधराय सर्वरूपधराय च ।
नमस्त्रिपुरहर्ताय यज्ञविध्वंसनाय च ॥ २६६ ॥
नमः कामाङ्गनाशाय कालदण्डधराय च ।
नमः स्कन्धविशाखाय ब्रह्मदण्डाय वै नमः ॥ २६७ ॥
नमो भवाय शर्वाय विश्वरूपाय वै नमः ।
ईशानाय भवघ्नाय नमोस्त्वन्धकघातिने ॥ २६८ ॥
नमो विश्वाय मायाय चिन्त्याचिन्त्याय वै नमः ।
त्वं नो गतिश्च श्रेष्ठश्च त्वमेव हृदयं तथा ॥ २६९ ॥
त्वं ब्रह्मा सर्वदेवानां रुद्राणां नीललोहितः ।
आत्मा च सर्वभूतानां सांख्ये पुरुष उच्यते ॥ ३०० ॥
ऋषभस्त्वं पवित्राणां योगिनां निष्कलः शिवः ।
गृहस्थस्त्वमाश्रमिणामीश्वराणां महेश्वरः ॥ ३०१ ॥

नमस्कार है । तुम पवन के समान वेगवान्, पवनस्वरूप, सोने की माला पहने हुए और पर्वत पर क्रीडा करने वाले हो इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम सुरारिमाल धारी और प्रचण्ड वेग वाले, ब्रह्मा के शिर को काटने वाले और महिष का नाश करने वाले हो इससे तुम्हें नमस्कार है ।

त्रिमूर्त्तिधारी, सर्वरूपधारी, त्रिपुरहन्ता और यज्ञ विध्वंसकारी हो, इससे तुम्हें नमस्कार है । तुम कामदेव के शरीर का नाश करने वाले कालदण्डधारी कार्तिकेय विपाख और ब्रह्मदण्ड स्वरूप हो इससे तुम्हें नमस्कार है । तुम भव, शर्व, विश्वरूप, ईशान, संसार के संहारक और अन्धकान्तक हो इससे तुम्हें नमस्कार है । तुम विश्वव्यापी, मायामय चिन्त्य और अचिन्त्य हो इससे तुम्हें प्रणाम है । तुम हमारे लिये श्रेष्ठ तथा गति स्वरूप हो तुमही हम लोगों के हृदय स्वरूप हो । तुम सब देवताओं में ब्रह्मा, रुद्रगणों में नील लोहित, सब प्राणियों की आत्मा और सांख्ययोग में पुरुष रूप से वर्णित हुआ करते हो । तुम पवित्र लोगों में

कुवेरः सर्वयक्षाणां क्रतूनां विष्णुरुच्यते ।
पर्वतानां भवान्मेरुर्नक्षत्राणाञ्च चन्द्रमाः ॥ ३०२ ॥
वशिष्ठस्त्वं ऋषीणाञ्च ग्रहाणां सूर्य्य उच्यते ।
अरण्यानां पशूनाञ्च सिंहस्त्वं परमेश्वरः ॥ ३०३ ॥
ग्राम्याणां गोवृषश्चासि भवाँल्लोकप्रपूजितः ।
आदित्यानां भवान्विष्णुर्वसूनाञ्चैव पावकः ॥ ३०४ ॥
पक्षिणां वैनतेयस्त्वमनन्तो भुजगेषु च ।
सामवेदश्च वेदानां यजुषां शतरुद्रियम् ॥ ३०५ ॥
सनत्कुमारो योगीनां सांख्यानां कपिलो ह्यसि ।
शक्रोऽसि मरुतां देव पितृणां देवराडसि ॥ ३०६ ॥
ब्रह्मलोकश्च लोकानां गतीनां मोक्ष उच्यसे ।
क्षीरोदः सागराणाञ्च शैलानां हिमवान् गिरिः ॥ ३०७ ॥
वर्णानां ब्राह्मणश्चासि विप्राणां दीक्षितो द्विजः ।
आदिस्त्वमसि लोकानां संहर्ता काल एव च ॥ ३०८ ॥
यच्चान्यदपि लोके वै सर्वतेजोऽधिकं स्मृतम् ।
तत्सर्वं भगवानेव इति मे निश्चिता मतिः ॥ ३०९ ॥

ऋषभ, योगियों में निष्कलशिव, आश्रमी पुरुषों में गृहस्थ और ईश्वरों में महेश्वर हो। तुम यक्षों में कुवेर हो और यज्ञों में विष्णु कहे जाते हो। तुम पर्वतों में मेरु और नक्षत्रों में चन्द्रमा हो। ऋषियों में वशिष्ठ और ग्रहों में सूर्य कहलाते हो। तुम्हीं परमेश्वर हो। तुम जंगली पशुओं के बीच सिंह हो। और ग्रामवासी पशुओं में लोक पूजित गऊ वृषभ स्वरूप हो। तुम आदित्यों में विष्णु, वसुओं में अग्नि, पक्षियों में गरुड़, सर्पों में अनन्त, वेदों में सामवेद, यजुर्वेद में शतरुद्रीय, योगियों में सनत्कुमार और सांख्य शास्त्रके विद्वानों में कपिल स्वरूप हो। हे देव! तुम देवताओं में इन्द्र तथा पितरों में देवराज हो। तुम लोकों में ब्रह्म लोक और गतियों में मोक्ष स्वरूप से वर्णित हुआ करते हो। तुम समुद्रों में क्षीरसागर, पर्वतों में हिमालय, वर्णों में ब्राह्मण, और विप्रों में विद्वान् ब्राह्मण हो। तुम सब लोगों के आदिकर्ता और संहर्ता काल हो। लोक में जो कुछ अधिक तेज वाली वस्तु दीख पड़ती है वह सभी भगवान् का स्वरूप है ऐसा ही मेरी बुद्धि में निश्चय हुआ है। हे

नमस्ते भगवन्देव नमस्ते भक्तवत्सल ।
योगेश्वर नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वसम्भव ॥ ३१० ॥
प्रसीद मम भक्तस्य दीनस्य कृपणस्य च ।
अनैश्वर्येण युक्तस्य गतिर्भव सनातन ॥ ३११ ॥
यच्चापराधं कृतवानज्ञानात् परमेश्वर ।
मद्भक्त इति देवेश तत् सर्वं क्षन्तुमर्हसि ॥ ३१२ ॥
मोहितश्चास्मि देवेश त्वया रूपविपर्ययात् ।
नार्घ्यन्ते न मया दत्तं पाद्यञ्चापि महेश्वर ॥ ३१३ ॥
एवं स्तुत्वाहमीशानं पाद्यमर्घ्यञ्च भक्तितः ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा सर्वं तस्मै न्यवेदयम् ॥ ३१४ ॥
ततः शीताम्बुसंयुक्ता दिव्यगन्धसमन्विता ।
पुष्पवृष्टिः शुभा तात पपात मम मूर्द्धनि ॥ ३१५ ॥
दुन्दुभिश्च तदा दिव्यस्ताडितो देवकिंकरैः ।
ववौ च मारुतः पुण्यः शुचिगन्धःसुखावहः ॥ ३१६ ॥
ततः प्रीतो महादेवः सपत्नीको वृषध्वजः ।
अब्रवीत्त्रिदशांस्तत्र हर्षयन्निव मां तदा ॥ ३१७ ॥

भगवान् देव ! तुम्हें मनस्कार है । हे भक्तवत्सल तुम्हें प्रणाम है । हे योगेश्वर तुम्हे नमस्कार है । हे जगत की सृष्टि करने वाले तुम्हें नमस्कार करता हूँ ।

हे सनातन ! कृपाकर मुझ दीन कृपण अनैश्वर्ययुक्त भक्त के लिये गति! हे परमेश्वर ! हे देवेश ! मैंने अज्ञानवश जो कुछ अपराध किया है आप मुझे अपना भक्त समझकर उस अपराध को क्षमा कीजिये । हे देवेश! मैं तुम्हारे रूप बदलने से मोहित होगया था इसी से मैंने तुम्हें पाद्य-अर्घ प्रदान नहीं किया । इस प्रकार मैंने महादेवजी की स्तुति करके भक्तिभाव से हाथ जोड़ कर पाद्य अर्घ आदि प्रदान किया । हे तात ! अनन्तर मेरे शिरपर शीतल जल से पूरित, दिव्यगन्धयुक्त, शुभ पुष्प वृष्टि होने लगी । देवताओं के सेवक दिव्य दुन्दुभी बजाने लगे । पवित्र गन्धवाला सुखदायक पुण्य जनक वायु बहने लगा । इसके बाद सपत्नीक वृषध्वज महादेव प्रसन्न होकर उस समय मानो मुझे हर्षित करते हुये देवताओं से बोले

पश्यध्वं त्रिदशाः सर्वे उपमन्योर्महात्मनः ।
मयि भक्तिं परां नित्यमेकभावादवस्थिताम् ॥ ३१८ ॥
एवमुक्तास्तदा कृष्ण सुरास्ते शूलपाणिना ।
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे नमस्कृत्वा वृषध्वजम् ॥ ३१९ ॥
भगवन्देवदेवेश लोकनाथ जगत्पते ।
लभतां सर्वकामेभ्यः फलं त्वत्तो द्विजोत्तमः ॥ ३२० ॥
एवमुक्तस्ततः शर्वः सुरैर्ब्रह्मादिभिस्तथा ।
आह मां भगवानीशः प्रहसन्निव शंकरः ॥ ३२१ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

वत्सोपमन्यो तुष्टोऽस्मि पश्य मां मुनिपुङ्गव ।
दृढभक्तोऽसि विप्रर्षे मया जिज्ञासितो ह्यसि ॥ ३२२ ॥
अनया शिवभक्त्या ते अत्यर्थं प्रीतिमानहम् ।
तस्मात् सर्वान् ददाम्यद्य कामांस्तव यथेप्सितान् ॥ ३२३ ॥
एवमुक्तस्य चैवाथ महादेवेन धीमता ।
हर्षादश्रूण्यवर्तन्त रोमहर्षस्त्वजायत ॥ ३२४ ॥
अब्रवञ्च तदादेवं हर्षगद्गदया गिरा ।

हे देवताओं ! मुझमें महात्मा उपमन्यु की एकाग्र भाव स्थित परमभक्ति अवलोकन करो । हे कृष्ण ! जब शूलपाणि ने देवताओं से ऐसा कहा तब वे लोग हाथ जोड़ कर वृषध्वज को नमस्कार कर बोले— हे भगवन् ! हे देवदेवेश ! जगत्पाल ! लोकनाथ ! यह द्विजवर आपके द्वारा सब इच्छित फल प्राप्त करे । भगवान् शंकर ब्रह्मादिक देवताओं का ऐसा वचन सुनकर हँसकर मुझसे कहने लगे—(भगवान् बोले)—हे पुत्र मुनिपुङ्गव उपमन्यु ! मैं तुम पर प्रसन्न हुआ हूँ । तुम मेरा दर्शन करो हे विप्रर्षि ! तुम मेरे दृढ़ भक्त हो । मैंने तुम्हारी परीक्षा कर ली तुम्हारी भक्ति के वश में होकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ । इसलिये इस समय तुम्हारी जो कुछ अभिलाषा होगी उन सब काम्य विषयों को प्रदान करूँगा । धीमान् महादेव के ऐसे वचन सुनकर हर्ष के कारण मेरे नेत्रों से आंसु गिरने लगे और रोमांच हो आया ।

उस समय मैं दोनों जानु पृथ्वीपर स्थापित कर उस देव को बारबार

जानुभ्यामवनीं गत्वा प्रणम्य च पुनः पुनः ॥ ३२५ ॥
अथ जातोऽहं देव सफलं जन्म चाथ मे ।
सुरासुरगुरुर्देवो यत्तिष्ठति ममाग्रतः ॥ ३२६ ॥
यं न पश्यन्ति चाराध्य देवाह्यमितविक्रमम् ।
तमहं दृष्टवान् देवं कोऽन्यो धन्यतरो मया ॥ ३२७ ॥
एवं ध्यायन्ति विद्वांसः परं तत्त्वं सनातनम् ।
तद्विशेषमितिख्यातं यदजं ज्ञानमक्षरं ॥ ३२८ ॥
स एष भगवान्देवः सर्वसत्वादिरव्ययः ।
सर्वतत्वविधानज्ञः प्रधानपुरुषः परः ॥ ३२९ ॥
योऽसृजद्दक्षिणादङ्गाद्ब्राह्मणं लोकसम्भवम् ।
वामपार्श्वात्तथा विष्णुं लोकरक्षार्थमीश्वरः ॥ ३३० ॥
युगान्ते चैव सम्प्राप्ते रुद्रमीशोऽसृजत् प्रभुः ।
स रुद्रः संहरन् कृत्स्नं जगत् स्थावरजङ्गमम् ॥ ३३१ ॥
कालो भूत्वा महातेज संवर्तक इवानलः ।
युगान्ते सर्वभूतानि ग्रसन्निव व्यवस्थितः ॥ ३३२ ॥

प्रणाम करके हर्षित होकर गद्गद वचन से कहने लगा। हे भगवन्! आ[ज] सुर और असुरों के गुरु आप मेरे सामने खड़े हैं तब आज मे[रा] जन्मग्रहण करना सफल हुआ। देवता लोग आराधना करके भी जि[स] देवेश्वर का दर्शन करने में समर्थ नहीं होते मैं उसीका दर्शन कर रहा हूं। इसलिये मेरे समान और कौन धन्य पुरुष है। विद्वान् लोग इसी सन्मु[ख] स्थित मूर्तिरूप सनातन परमतत्व का ध्यान किया करते हैं। यही मू[र्ति] देवान्तरापेक्षा विशिष्टमूर्ति नित्य अविनाशी अजन्मा और ज्ञानस्वरू[प] कही जाती है। यह वही भगवान् जीवों के आदि अव्यय सर्वतत्व विधा[न] के जानने वाला प्रधान परमपुरुष है जिसने दक्षिण अंग से लोकोत्पत्ति[के] निमित्त ब्रह्मा को और बाम भाग से लोक रक्षा के निमित्त विष्णु [को] उत्पन्न किया है। जो प्रलय काल होनेपर रुद्र को उत्पन्न करता है औ[र] सदा स्थावर जङ्गम मय समस्त जगत का संहार करते हुए संवर्त[क] अग्नि की भांति महातेजस्वी काल स्वरूप से युग के अन्त में स[ब] भूतों का ग्रास करके स्थित होता है। यह महादेव सचरा[चर]

एष देवो महादेवो जगत्स्रष्टा चराचरम् ।
कल्पान्ते चैव सर्वेषां स्मृतिमाक्षिप्य तिष्ठति ॥ ३३३ ॥
सर्वगः सर्वभूतात्मा सर्वभूतभवोद्भवः ।
आस्ते सर्वगतो नित्यमदृश्यः सर्वदैवतैः ॥ ३३४ ॥
यदि देयो वरो मह्यं यदि तुष्टोऽसि मे प्रभो ।
भक्तिर्भवतु मे नित्यं त्वयि देव सुरेश्वर ॥ ३३५ ॥
अतीतानागतञ्चैव वर्तमानञ्च यद्विभो ।
जानीयामिति मे बुद्धिः प्रसादात् सुरसत्तम ॥ ३३६ ॥
क्षीरोदनञ्च भुञ्जीयामक्षयं सह बान्धवैः ।
आश्रमे च सदास्माकं सान्निध्यं परमस्तु ते ॥ ३३७ ॥
एवमुक्तः स मां प्राह भगवांल्लोकपूजितः ।
महेश्वरो महातेजाश्चराचरगुरुः शिवः ॥ ३३८ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

मारश्चअजश्चैव भव त्वं दुःख वर्जितः ।
यशस्वी तेजसा युक्तो दिव्यज्ञानसमन्वितः ॥ ३३९ ॥
ऋषीणामभि गम्यश्च मत्प्रसादाद्भविष्यसि ।
शीलवान् गुणसम्पन्नः सर्वज्ञः प्रियदर्शनः ॥ ३४० ॥

जगत का सृष्टिकर्त्ता है और कल्पान्त में सबकी स्मरण शक्ति को नष्ट कर देता है। यही सर्वव्यापी सब प्राणियों के अन्तरात्मा, सब जीवों का उत्पत्ति स्थान है और सर्वत्र विद्यमान होकर भी सब देवताओं को नहीं दीख पड़ता। हे देव! हे सुरेश्वर! यदि तुम मुझ पर प्रसन्न हुए हो और मुझे वर देना चाहते हो तो मैं यही वर मांगता हूँ कि तुम में सदा मेरी भक्ति बनी रहे। हे विभो! हे सुरसत्तम! भूत, वर्त्तमान और भविष्य के विषय को मैं तुम्हारी कृपा से जान सकूं यही मेरी प्रार्थना है। मैं बान्धवों के सहित अक्षय क्षीरोदन भोजन करूं तथा मेरे आश्रम में आपका सदा निवास रहै। लोकपूजित, चराचरगुरु, महातेजस्वी, भगवान् महेश्वर मेरी ऐसी प्रार्थना सुन कर मुझसे बोले—

भगवान् बोले हे द्विजवर! तुम मेरी कृपा से अजर, अमर, दुःखरहित, यशस्वी और दिव्य ज्ञानी होकर ऋषियों में आदरणीय होगे। तुम

अक्षयं यौवनं तेऽस्तु तेजश्चैवानलोपमम् ।
क्षीरोदः सागरश्चैव यत्र यत्रेच्छसि प्रियम् ॥ ३४१ ॥
तत्र ते भविता कामं सान्निध्यं पयसोनिधेः ।
क्षीरोदनञ्च भुङ्क्त्वममृतेन समन्वितम् ॥ ३४२ ॥
बन्धुभिः सहितः कल्पं ततो मामुपयास्यसि ।
अक्षया बान्धवाश्चैव कुलं गोत्रञ्च ते सदा ॥ ३४३ ॥
भविष्यति द्विजश्रेष्ठ मयि भक्तिश्च शाश्वती ।
सान्निध्यञ्चाश्रमे नित्यं करिष्यामि द्विजोत्तम ॥ ३४४ ॥
तिष्ठ वत्स यथाकामं नोत्कण्ठाञ्च करिष्यसि ।
स्मृतस्त्वया पुनर्विप्र करिष्यामि च दर्शनम् ॥ ३४५ ॥
एवमुक्त्वा स भगवान् सूर्यकोटिसमप्रभः ।
ईशानः स वरान् दत्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥ ३४६ ॥
एवं दृष्टो मया कृष्ण देवदेवः समाधिना ।
तदवाप्तञ्च मे सर्वं यदुक्तं तेन धीमता ॥ ३४७ ॥
प्रत्यक्षञ्चैव ते कृष्ण पश्य सिद्धान् व्यवस्थितान् ।
ऋषीन् विद्याधरान् यक्षान् गंधर्वाप्सरसस्तथा ॥ ३४८ ॥

शीलवान्, गुणवान्, सर्वज्ञ और प्रियदर्शन होगे । तुम्हारा तेज अग्नि के समान और यौवन अक्षय होगा । तुम जिस स्थान को प्रिय समझोगे उसी स्थान में अपनी इच्छा से क्षीरसागर को उत्पन्न कर सकोगे । तुम बान्धवों के साथ अमृत के तुल्य क्षीरोदन (दूध भात) खाओ । एक कल्प बीतने पर तुम मेरे पास आओगे । हे द्विजश्रेष्ठ तुम्हारे बान्धव का और तुम्हारा कुल और गोत्र सदा अक्षय होगा और मुझ में तुम्हारी दृढ़ भक्ति रहेगी । हे द्विजश्रेष्ठ मैं सदा तुम्हारे आश्रम के निकट रहूंगा। हे पुत्र ! तुम सुख पूर्वक रहो, चिन्ता मत करना । तुम जब मेरा स्मरण करोगे तब मैं तुम्हें दर्शन दूंगा ।

कोटि सूर्य के समान प्रकाश से युक्त भगवान् ईशान ऐसा कहकर वर देकर उसी स्थान में अन्तर्ध्यान हो गये । हे कृष्ण इसी प्रकार समाधि के बल से मैंने देवों के देव महादेव का दर्शन किया था । उन्होंने जो कुछ कहा था मुझे वह सब प्राप्त होगया है । हे कृष्ण प्रत्यक्ष देखो, यहां सिद्ध, ऋषि, विद्याधर, यक्ष, गंधर्व और अप्सरायें रहती हैं।

पश्य वृक्षलतागुल्मान् सर्वपुष्पफलप्रदान् ।
सर्वर्तुकुसुमैर्युक्तान् सुखपत्रान् सुगन्धिनः ॥ ३४६ ॥
सर्वमेतन्महाबाहो दिव्यभावसमन्वितम् ।
प्रसादाद्देवदेवस्य ईश्वरस्य महात्मनः ॥ ३५० ॥

श्री वासुदेव उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य प्रत्यक्षमिव दर्शनम् ।
विस्मयं परमं गत्वा अब्रवन्तं महामुनिम् ॥ ३५१ ॥
धन्यस्त्वमसि विप्रेन्द्र कस्त्वदन्योऽस्ति पुण्यकृत् ।
यस्य देवाधिदेवस्ते सान्निध्यं कुरुतेऽऽश्रमे ॥ ३५२ ॥
अपि तावन्ममाप्येवं दद्यात्स भगवान् शिवः ।
दर्शनं मुनिशार्दूल प्रसादश्चापि शङ्करः ॥ ३५३ ॥

उपमन्युरुवाच ।

द्रक्षसे पुण्डरीकाक्ष महादेवं न संशयः ।
अचिरेणैव कालेन यथा दृष्टो मयानघ ॥ ३५४ ॥
चक्षुषा चैव दिव्येन पश्याम्यमितविक्रम् ।
षष्ठे मासि महादेवं द्रक्ष्यसे पुरुषोत्तम ॥ ३५५ ॥
षोडशाष्टौ वरांश्चापि प्राप्स्यसि त्वं महेश्वरात् ।

सब प्रकार के पुष्प और फल देनेवाले वृक्षों, लताओं और गुल्मों को देखो वे सब ऋतुओं में सुन्दर पत्ते, पुष्प और सुगन्धि से युक्त रहते हैं। महानुभाव, देवों के देव, ईश्वर की कृपा से ये सब दिव्यभाव से सम्पन्न हैं। श्रीकृष्ण बोले—मैंने प्रत्यक्ष दर्शन के बाद उस महामुनि के वचन सुनकर अत्यन्त विस्मित होकर उनसे कहा हे विप्रेन्द्र! तुम धन्य हो, तुमसे बढ़कर पुण्यात्मा और कौन है क्योंकि देवों के देव महादेव स्वयं तुम्हारे आश्रम में निवास करते हैं।

हे मुनिपुङ्गव! कल्याणदाता शंकर क्या मुझे भी दर्शन देने की कृपा करेंगे? उपमन्यु बोले—हे निष्पाप, पुण्डरीकाक्ष! मैंने जिस प्रकार दर्शन किया था उसी प्रकार तुम भी थोड़े ही समय में महादेवका दर्शन करोगे। हे पुरुषोत्तम! मैं दिव्य नेत्र के सहारे देखता हूं कि तुम छठे महीने महादेव का दर्शन करोगे। हे यदुश्रेष्ठ! तुम पार्वती से सोलह

सपत्नीकाद्यदुश्रेष्ठ सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ३५६ ॥
अतीतानागतश्चैव वर्तमानश्च नित्यशः ।
विदितं मे महाबाहो प्रसादात्तस्य धीमतः ॥ ३५७ ॥
एतान् सहस्रशश्चान्यान् समनुध्यातवान् हरः ।
कस्मात् प्रसादं भगवान् न कुर्यात्तव माधव ॥
त्वादृशेन हि देवानां श्लाघनीयः समागमः ॥ ३५८ ॥
ब्रह्मण्येनानृशंसेन श्रद्दधानेन चाप्युत ।
जप्यन्तु ते प्रदास्यामि येन द्रक्ष्यसि शङ्करम् ॥ ३५९ ॥

श्रीभगवानुवाच—

अब्रवन्तमहं ब्रह्मंस्त्वत्प्रसादान्महामुने ।
द्रक्ष्ये दितिज सङ्घानां मर्दनं त्रिदशेश्वरम् ॥ ३६० ॥
एवं कथयतस्तस्य महादेवाश्रितां कथाम् ।
दिनान्यष्टौ ततो जग्मुर्मुहूर्तमिव भारत ॥ ३६१ ॥
दिनेऽष्टमे तु विप्रेण दीक्षितोऽहं यथा विधि ।
दण्डी मुण्डी कुशी चीरी घृताक्तो मेखली कृतः ॥ ३६२ ॥

और महादेव से आठ इस प्रकार चौबीस वर पाओगे। यह मैं तुमसे सत्य कहता हूं। हे महाबाहो! उस महेश्वर के प्रसाद से भूत वर्त्तमान और भविष्य इन तीनों काल की बात मैं जान सकता हूं। हे माधव! भगवान् भवानीपति ने जब इन सब ऋषियों तथा दूसरे सहस्रों पुरुषों पर कृपा की है तब तुम पर कृपा क्यों न करेंगे? विशेपकर तुम्हारे समान ब्रह्मनिष्ठ, अनृशंस और श्रद्धावान् पुरुषों के साथ समागम होना देवताओं में श्लाघनीय है। मैं तुमको एक मंत्र बतलाता हूं जिसके जप के प्रभाव से तुम्हें शीघ्र ही महादेव के दर्शन होंगे।

विष्णु बोले—मैंने उनसे कहा हे ब्रह्मन्, हे महामुनि! मैं आपकी कृपा से दैत्यों के दल का मर्दन करने वाले महेश्वर का दर्शन करूँगा। हे भारत! इसी प्रकार महादेवविषयक कथा कहते २ एक पलमात्र के समान आठ दिन बीत गये। आठवें दिन मैंने उस विप्र से विधि पूर्वक दीक्षा पाई। दण्डधारी, मुण्डित शिर, कुश चीरधारी और

मासमेकं फलाहारो द्वितीयं सलिलाशनः ।
तृतीयञ्च चतुर्थञ्च पञ्चमञ्चानिलाशनः ॥ ३६३ ॥
एकपादेन तिष्ठंश्च ऊर्ध्वबाहुरतन्द्रितः ।
तेजः सूर्य्य सहस्रस्य अपश्यं दिवि भारत ॥ ३६४ ॥
तस्य मध्यगतश्चापि तेजसः पाण्डुनन्दन ।
इन्द्रायुधपिनद्धाङ्गं विद्युन्मालागवाक्षकम् ।
नीलशैलचयप्रख्यं वलाकाभूषितांवरम् ॥ ३६५ ॥
तत्र स्थितश्च भगवान् देव्या सह महाद्युतिः ।
तपसा तेजसा कान्त्या दीप्तया सह भार्यया ॥ ३६६ ॥
रराज भगवांस्तत्र देव्या सह महेश्वरः ।
सोमेन सहितः सूर्यो यथा मेघस्थितस्तथा ॥ ३६७ ॥
संहृष्टरोमा कौन्तेय विस्मयोत्फुल्ललोचनः ।
अपश्यं देवसंघानां गतिमार्तिहरं हरम् ॥ ३६८ ॥

किरीटिनं गदिनं शूलपाणिं
व्याघ्राजिनं जटिलं दण्डपाणिम् ।
पिनाकिनं वज्रिणं तीक्ष्णदंष्ट्रं
शुभांगदं व्यालयज्ञोपवीतम् ॥ ३६९ ॥

घृताक्त होकर मेखला धारण की । एक महीने तक फलाहार करके रहा । दूसरे महीने में जल पीकर रहा और तीसरे चौथे तथा पांचवें महीने तक वायु पीकर निवास किया । हे भारत ! मैं ऊर्ध्वबाहु और आलस्य रहित होकर एक पैर पर खड़ा रहा । तब मैंने आकाश मण्डल में हजारों सूर्य के समान एक तेज देखा । हे पाण्डुनन्दन ! उस तेज के बीच में इन्द्रधनुप की शोभावाले, विद्युन्माला रूप गवाक्ष से युक्त नील पर्वत के समान वकपंक्ति से विभूषित एक विचित्र तेज दिखाई दिया ।

महातेजस्वी भगवान् महेश्वर देवी उमा के सहित उसी तेजमण्डल में तप तेज कान्ति और दीप्ति के साथ मेघमण्डल में स्थित चन्द्रमा से युक्त सूर्य की भाँति विराजते थे । हे कुन्तीनन्दन ! मैंने रोमाञ्चित शरीर और विस्मयोत्फुल्ल नेत्र से देवताओं की गति तथा दीनों का दुःख हरने वाले महादेव का दर्शन किया । मैंने देखा कि वे तीक्ष्णदन्त, किरीट, गदा, त्रिशूल, बाघाम्बर, जटा, दण्ड, पिनाक, वज्र, केयूर, सर्पों का यज्ञोपवीत

दिव्यां मालामुरसानेकवर्णां
समुद्वहन्तं गुल्फदेशावलम्बिनां ।
चन्द्रं तथा परिविष्टं ससन्ध्यं
वर्षात्यये तद्वदपश्यमेनम् ॥ ३७० ॥
प्रमथानां गणैश्चैव समन्तात् परिवारितम् ।
शरदीव सुदुष्प्रेक्ष्यं परिविष्टं दिवाकरम् ॥ ३७१ ॥
एकादशशतान्येव रुद्राणां वृषवाहनम् ।
अस्तुवन्नियतात्मानं कर्मभिः शुभकर्मिणम् ॥ ३७२ ॥
आदित्या वसवः साध्या विश्वेदेवास्तथाऽश्विनौ ।
विश्वाभिस्तुतिभिर्देवं विश्वदेवं समस्तुवन् ॥ ३७३ ॥
शतक्रतुश्च भगवान् विष्णुश्चादितिनन्दनौ ।
ब्रह्मा रथन्तरं साम ईरयन्ति भवान्तिके ॥ ३७४ ॥
योगीश्वराः सुबहवो योगदं पितरं गुरुम् ।
ब्रह्मर्षयश्च ससुतास्तथा देवर्षयश्च वै ॥ ३७५ ॥
पृथिवींचान्तरिक्षश्च नक्षत्राणि ग्रहास्तथा ।
मासार्द्धमासाऋतवो रात्रिः संवत्सराः क्षणाः ॥ ३७६ ॥
मुहूर्ताश्च निमेषाश्च तथैव युगपर्य्ययाः ।
दिव्याराजन्नमस्यन्ति विद्याः सत्यविदस्तथा ॥ ३७७ ॥

और गुल्फ भाग तक लटकती हुई कई रङ्गों की मालाओं को धारण किये हुए वर्षा की समाप्ति में सन्ध्या के सहित चन्द्रमा के समान मालूम हो रहे हैं। वे शरदकाल में निर्मल और अदर्शनीय प्रकाशवाले सूर्य के समान जान पड़ते थे। भूतगणों से सब प्रकार घिरे हुये थे और ग्यारह सौ रुद्र मन और कर्म से सदा शुभ कर्म शील उस वृषवाहन महेश्वर की स्तुति करते थे।

आदित्यगण, वसु, साध्य, विश्वेदेव, और दोनों अश्विनीकुमार विश्व-स्तुति के द्वारा उस विश्वेश्वर की आराधना करते थे। अदितिनन्दन इन्द्र विष्णु और ब्रह्मा महादेव के निकट रथन्तर सामगान करते थे। हे राजन्! बहुत से योगीन्द्र पुत्रों के सहित ब्रह्मर्षि, देवर्षि, पृथ्वी, आकाश नक्षत्र, ग्रह, मास, पक्ष, सब ऋतुएँ, रात्रि, संवत्सर, क्षण, मुहूर्त्त, निमेष, युगपर्याय, दिव्यविद्या और सत्यवेत्ता सब प्राणी उस योगदाता पिता

सनत्कुमारो वेदाश्च इतिहासास्तथैव च ।
मरीचिरङ्गिरा अत्रिः पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥ ३७८ ॥
मनवः सप्त सोमश्च अथर्वा स बृहस्पतिः ।
भृगुर्दक्षः काश्यपश्च वशिष्ठः काश्य एव च ॥ ३७९ ॥
छन्दांसि दीक्षा यज्ञाश्च दक्षिणाः पावको हविः ।
यज्ञोपगानि द्रव्याणि मूर्तिमन्ति युधिष्ठिर ॥ ३८० ॥
प्रजानां पालकाः सर्वे सरितः पन्नगा नगाः ।
देवानां मातरः सर्वा देवपत्न्यः सकन्यकाः ॥ ३८१ ॥
सहस्राणि मुनीनाञ्च अयुतान्यर्बुदानि च ।
नमस्यन्ति प्रभुं शान्तं पर्वताः सागरा दिशः ॥ ३८२ ॥
गन्धर्वाप्सरसश्चैव गीता वादित्र कोविदाः ।
दिव्यतानेषु गायन्तस्तुवन्ति भवमद्भुतम् ।
विद्याधरा दानवाश्च गुह्यका राक्षसास्तथा ॥ ३८३ ॥
वर्षाणि चैव भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
नमस्यन्ति महाराज वाङ्मनःकर्मभिर्विभुम् ॥
पुरस्ताद्धिष्ठितः शर्वो ममासीत्त्रिदशेश्वरः ॥ ३८४ ॥

तथा गुरुको नमस्कार करते थे । सनत्कुमार समस्त वेद इतिहास, मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, सातों मनु, सोम, अथर्वा, भृगु, दक्ष, काश्यप, वशिष्ठ, काश्य, समस्त छन्द, दीक्षा, यज्ञ, दक्षिणा, अग्नि, हवि, यज्ञ के मूर्तिमान्, उपकरण तथा सब सामग्री, समस्त प्रजापालक, नदियां, पन्नग, नग, सब देवमातायें, देवपत्नियाँ, देवकन्यायें, सहस्र, अयुत, और अर्बुद संख्या में मुनि लोग, पर्वत, समुद्र, दिशायें, गीत और वाद्य के जाननेवाले गन्धर्व तथा अप्सरायें, दिव्यतान के सहित गान करती हुई शान्त और अद्भुत को प्रणाम करके स्तुति कर रही थीं । हे महाराज ! विद्याधर दानव, गुह्यक, राक्षस और स्थावर तथा जंगम सब प्राणी मन वचन और कर्म से उस महेश्वर को प्रणाम करते थे । देवेश्वर महादेव मेरे सामने खड़े थे । हे भारत ! मेरे सामने महादेव को खड़े हुये देखकर ब्रह्मा और इन्द्र आदि सब देवता मुझे देखने लगे । उस समय महादेव की ओर देखने की सामर्थ्य न हुई । तब महेश्वर मुझसे बोले हे कृष्ण तुम मेरा दर्शन करो और जो कुछ अभिलाषा हो मुझसे कहो ।

पुरस्ताद्धिष्ठितं दृष्ट्वा ममेशानञ्च भारत ।
सप्रजापतिशक्रान्तं जगन्मामभ्युदैक्षत ॥ ३८५ ॥
ईक्षितुञ्च महादेवं न मे शक्तिरभूत्तदा ।
ततो मामब्रवीद्देवः पश्य कृष्ण वदस्व च ॥ ३८६ ॥
त्वया ह्याराधितश्चाहं शतशोऽथ सहस्रशः ।
त्वत्समो नास्ति मे कश्चित्त्रिषु लोकेषु वै प्रियः ॥ ३८७ ॥
शिरसा वन्दिते देवे देवीप्रीता ह्युमाभवत् ।
ततोऽहमब्रवं स्थाणुं स्तुतं ब्रह्मादिभिः सुरैः ॥ ३८८ ॥

श्रीविष्णुरुवाच ।

नमोऽस्तु ते शाश्वत सर्वयोने
ब्रह्माधिपं त्वां ऋषयो वदन्ति ।
तपश्च सत्वञ्च रजस्तमश्च
त्वामेव सत्यञ्च वदन्ति सन्तः ॥ ३८९ ॥
त्वं वै ब्रह्मा च रुद्रश्च वरुणोऽग्निर्मनुर्भवः ।
धाता त्वष्टा विधाता च त्वं प्रभुः सर्वतोमुखः ॥ ३९० ॥
त्वत्तो जातानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
त्वया सृष्टमिदं कृत्स्नं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ३९१ ॥

तुमने सैकड़ों और सहस्रों बार मेरी आराधना की है । तीनों लोक में तुम्हारे समान मेरा कोई प्रियपात्र नहीं है । मैंने जब शिर झुकाकर महादेव की वन्दना की तब उमादेवी प्रसन्न हुई । इसके बाद मैंने ब्रह्मादि देवताओं के पूज्य महादेव से कहा—

विष्णु बोले—हे सबके उत्पन्न करने वाले अविनाशी शंकर, तुम्हें प्रणाम है । ऋषि लोग तुम्हें सब वेदों के अधिपति कहते हैं । साधु लोग तुम्हीं को तप, सत्व, रज, तम और सत्य स्वरूप कहते हैं । तुम्हीं ब्रह्मा, रुद्र, वरुण, अग्नि, मनु, भव, धाता, त्वष्टा, (रूप निर्माता), विधाता और सर्वतोमुख प्रभु हो । स्थावर जंगम सब प्राणी तुम्हीं से उत्पन्न हुए हैं । चराचरों के सहित तीनों लोकों को तुम्हीं ने रचा है । ऋषि लोग तुम्हें सब इन्द्रियों

यानीन्द्रियाणीह मनश्च कृत्स्नं
ये वायवः सप्त तथैव चाग्नयः ।
ये देवसंस्थास्तव देवताश्च
तस्मात्परं त्वां ऋषयो वदन्ति ॥ ३६२ ॥

वेदाश्च यज्ञाः सोमश्च दक्षिणा पावको'हविः ।
यज्ञोपगञ्च यत्किञ्चित् भगवांस्तदसंशयम् ॥ ३६३ ॥

इष्टं दत्तमधीतञ्च व्रतानि नियमाश्च ये ।
ह्रीः कीर्तिः श्रीर्द्युतिस्तुष्टिः सिद्धिश्चैव तदर्पणी ॥ ३६४ ॥

कामः क्रोधो भयं लोभो मदः स्तम्भोऽथ मत्सरः ।
आधयो व्याधयश्चैव भगवंस्तनवस्तव ॥ ३६५ ॥

कृतिर्विकारः प्रणयः प्रधानं बीजमव्ययम् ।
मनसः परमायोनिः प्रभावश्चापि शाश्वतः ॥ ३६६ ॥

अव्यक्तः पवनोऽचिन्त्यः सहस्रांशुर्हिरण्मयः ।
आदिर्गणानां सर्वेषां भवान् वै जीविताश्रयः ॥ ३६७ ॥

मन, प्राण आदि पञ्च वायु, गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिण, सभ्य आवसथ्य श्रौत स्मार्त्त और लौकिक ये सात प्रकार की अग्नियां और देव अर्थात् सूत्रात्मा में जिनकी समाप्ति हुई है ऐसे स्तुति के योग्य देवता इन सब से परे वाणी से अगोचर और रूपादि से रहित मानते हैं ।

सब वेद, यज्ञ, सोम रस, दक्षिणा अग्नि, हवि तथा जो कुछ यज्ञ की सामग्री है वह सब साक्षात् भगवान् स्वरूप हैं । यज्ञ, दान, अध्ययन, व्रत, नियम, लज्जा, कीर्ति, श्री, द्युति, तुष्टि और सिद्धि ये सभी तुम्हारे स्वरूप की प्राप्ति के साधन हैं । हे भगवन् ! काम, क्रोध, भय, लोभ, मद, स्तम्भ, मत्सरता आधि और व्याधि ये सब तुम्हारे शरीर हैं । तुम क्रियारूप क्रियाफलभूत हर्ष आदि विकार, पुण्य, प्रबल वासनाबीज रूप प्रधान, मन के उत्पत्तिस्थान, शाश्वत प्रधान, अव्यक्त, पवन, अचिन्त्य चित्त ज्योतिरूप, सूर्य तथा अव्यक्त तत्वों के आदि तथा सबके जीविताश्रय अर्थात् नदियों के लिये समुद्र के समान प्राप्य-स्थान हो । महत आत्मा मति, ब्रह्मा, विष्णु, शम्भु, स्वयम्भू, बुद्धि, प्रज्ञा, उपलब्धि,

महानात्मामतिर्ब्रह्मा विश्वः शम्भुः स्वयम्भुवः ।
बुद्धिः प्रज्ञोपलब्धिश्च सम्वित् ख्यातिर्धृतिः स्मृतिः ॥ ३९८ ॥
पर्य्यायवाचकैः शब्दैर्महानात्मा विभाव्यते ।
त्वां बुद्ध्वा ब्राह्मणो वेदात् प्रमोहं विनियच्छति ॥ ३९९ ॥
हृदयं सर्वभूतानां क्षेत्रज्ञस्त्वमृषिष्टुतः ।
सर्वतः पाणिपादस्त्वं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः ।
सर्वतः श्रुतिमाँल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठसि ॥ ४०० ॥
फलं त्वमसि तिग्मांशोर्निमेषादिषु कर्म्मसु ॥ ४०१ ॥
त्वं वै प्रभार्च्चिः पुरुषः सर्वस्य हृदि संश्रितः ।
अणिमा लघिमा प्राप्तिरीशानो ज्योतिरव्ययः ॥ ४०२ ॥
त्वयि बुद्धिर्मतिर्लोकाः प्रपन्नाः संश्रिताश्च ये ।
ध्यानिनो नित्ययोगाश्च सत्यसन्धा जितेन्द्रियाः ॥ ४०३ ॥
यस्त्वां ध्रुवं वेदयते गुहाशयं
प्रभुं पुराणं पुरुषञ्च विग्रहम् ।

संविरख्याति, धृति, स्मृति आदि पर्याय वाचक शब्दों के द्वारा वेदार्थ जानने वाले पुरुषों से तुम्हीं वेद में महान् आत्मा कहे गये हो । विद्वान् ब्राह्मण लोग तुम्हें जानकर मोहजनक अज्ञान से छुटकारा पाते हैं ।

तुम सब प्राणियों के हृदय में वास करने वाले क्षेत्रज्ञ और मन्त्रों द्वारा स्तुति के योग्य हो । तुम्हारे पाणि और पाद का अन्त सर्वत्र विद्यमान है । तुम्हारे नेत्र सिर और मुख सर्वत्र विराजमान हैं । तुम सर्वत्र श्रुतिमान होकर सारे जगत को परिपूर्ण कर रहे हो । तुम्हीं सूर्य प्रभा तथा किरण और निमेष आदि स्वर्ग सुख रूप कर्मों के फल हो । तुम सबके हृदयस्थ पुरुष हो । तुम अणिमा (दुर्लभ तन्मात्र) हो, तुम लघिमा (त्रिविध परिच्छेद से रहित) हो, तुम प्राप्ति स्वरूप ईशान और अनन्य ज्योति हो । तुम में बुद्धि, मति और समस्त लोक स्थित हैं । जो लोग ध्याननिष्ठ नित्य योग में रत, सत्यसंकल्प और जितेन्द्रिय हैं वे तुम्हारीही शरण में रहते हैं । जो तुम्हें निश्चय, गुहाशय प्रभु पुराण पुरुष विशिष्टानुभवस्वरूप ज्योतिर्मय और बुद्धिमान पुरुषों की परम गति रूप जानते हैं, अथवा जानकर शिष्यों को जनाते हैं वे महाबुद्धिमान् पुरुष बुद्धि से

हिरण्मयं बुद्धिमतां परां गतिं
सबुद्धिमान्बुद्धिमतीत्य तिष्ठति ॥ ४०४ ॥

विदित्वा सप्त सूक्ष्माणि षडङ्गं त्वाञ्च मूर्तितः ।
प्रधान विधि योगस्थस्त्वामेव विशते बुधः ॥ ४०५ ॥

एवमुक्ते मया पार्थ भवे चार्तिविनाशने ।
चराचरं जगत्सर्वं सिंहनादं तदाकरोत् ॥ ४०६ ॥

तं विप्रसंघाश्च सुरासुराश्च नागाः पिशाचाः पितरो वयांसि ।
रक्षोगणा भूतगणाश्च सर्वे महर्षयश्चैव तदा प्रणेमुः ॥४०७॥

ममस्मूर्ध्नि च दिव्यानां कुसुमानां सुगन्धिनाम् ।
राशयो निपतन्तिस्म वायुश्च सुसुखो ववौ ॥ ४०८ ॥

निरीक्ष्य भगवान्देवीं ह्युमां माञ्च जगद्धितः ।
शतक्रतुञ्चाभिवीक्ष्य स्वयं मामाह शंकरः ॥ ४०९ ॥

विद्मः कृष्ण-परां भक्तिमस्मासु तव शत्रुहन् ।
क्रियतामात्मनः श्रेयः प्रीतिर्हि त्वयि मे परा ॥ ४१० ॥

परे निवास किया करते हैं । विद्वान् पुरुष सातों सूक्ष्म विषयों अर्थात् महत्तत्त्व अहंकार तथा पञ्चतन्मात्र और षडंगों अर्थात् सर्वज्ञता, तृप्ति, अनादि बोध, स्वतन्त्रता, नित्य अलुप्तशक्ति और अत्यन्तशक्तिसंयुक्त तुम्हें मूर्तिमान् रूप से जानकर और चित्त सत्व के आत्मा भिन्नत्व रूप से अज्ञानरूपी विधि के अनुसार योगयुक्त होकर तुम्हीं में प्रवेश करते हैं । हे पार्थ! आर्त्तिविनाशन महादेव से जब मैंने ऐसा कहा उस समय चराचरों से युक्त समस्त जगत् सिंहनाद करने लगा ।

उस समय ब्राह्मण, देवता, असुर, सर्प, पिशाच, पितर, पक्षी, राक्षस, समस्त प्राणि, तथा महर्षि आदि सबने उन्हें प्रणाम किया । मेरे सिर पर दिव्य सुगन्धियुक्त फूलों की वर्षा हुई और अत्यन्त सुख देनेवाली वायु बहने लगी ।

संसार का हित करने वाले भगवान् शंकर, उमादेवी, मुझे और इन्द्र को देख कर स्वयं मुझसे कहने लगे । हे शत्रुनाशन कृष्ण! यह मैं जानता हूं कि मुझपर तुम्हारी परम भक्ति है, तुम अपने कल्याण के

वृणीष्वाष्टौ वरान् कृष्ण दातास्मितव सत्तम ।
ब्रूहि यादवशार्दूल यानिच्छसि सुदुर्लभान् ॥ ४२३ ॥

इत्यनुशासनपर्वणि आनुशासनिकेपर्वणि मेघवाहनोपाख्याने चतुर्दशोऽध्यायः ॥ ४ ॥

साधन के लिये वर मांगो मैं तुम्हें आठ वर दूंगा । हे यादवश्रेष्ठ ! तुम जिन दुर्लभ वरों की इच्छा करते हो, उन्हें मांगो ।

इत्यनुशासनपर्वणि आ॰ शासिकेपर्वणि मेघवाहनोपाख्याने
चतुर्दशोऽध्यायः ।

—:o:—

अथ पञ्चदशोऽध्यायः ।

श्रीकृष्ण उवाच—

मूर्ध्ना निपत्य नियतस्तेजः सन्निचये ततः ।
परमं हर्षमागत्य भगवन्तमथाब्रवम् ॥ १ ॥

धर्मे दृढत्वं युधि शत्रुघातं
यशस्तथाग्र्यं परमं बलञ्च ।
योगप्रियत्वं तव सन्निकर्षं
वृणे सुतानां च शतं शतानि ॥ २ ॥

एवमस्त्विति तद्वाक्यं मयोक्तं प्राह शंकरः ।
ततो मां जगतो माता धारिणी सर्वपावनी ॥ ३ ॥
उवाचोमा प्रणिहिता शर्वाणी तपसां निधिः ।
दत्तो भगवता पुत्रः शाम्बोनामतवानघ ॥ ४ ॥
मत्तोप्यष्टौ वरानिष्टान् गृहाण त्वं ददामि ते ।
प्रणम्य शिरसा सा च मयोक्ता पाण्डुनन्दन ॥ ५ ॥

द्विजेष्वकोपं पितृतः प्रसादं
शतं सुतानां परमं च भोगम् ।
कुले प्रीतिं मातृतश्च प्रसादं
समप्राप्तिं प्रवृणे चापि दाक्ष्यम् ॥ ६ ॥

श्रीकृष्णजी बोले इसके बाद मैंने बड़ी सावधानी से तेजपुंज में विराजमान शिवजी को मस्तक से प्रणाम करके बड़ी प्रसन्नता पूर्वक यह बचन कहा। हे शिवजी! धर्म में दृढ़ता, आपकी सन्निकटता, युद्ध में स्थिर होकर शत्रुओं को मारना, उत्तम कीर्ति, बल व योग समेत ऐश्वर्य्य और दशहजार पुत्रों की मैं आपसे याचना चाहता हूं। मेरे इस बचन के कहते ही शिवजी बोले कि ऐसा ही हो। फिर सबका पोषण करनेवाली, बंधन से निवृत्त करनेवाली, तपपुंज और शुद्धरूप जगत की माता उमादेवी ने कहा कि हे निष्पाप! भगवान् शिव ने साम्बनाम पुत्र तुमको दिया। मैं भी तुमको आठ अभीष्ट वर देती हूं उनको लो। हे पाण्डुनन्दन! तब मैंने दण्डवत करके उससे कहा— ब्राह्मणों पर क्रोध न करने वाले, पिता के आज्ञाकारी, कुल के लोगों से

उमोवाच—

एवं भविष्यत्यमर प्रभाव नाहं मृषा जातु वदे कदाचित् ।
भार्यासहस्राणि च षोडशैव तासु प्रियत्वं च तथाक्षयं च ७
प्रीतिं चाग्र्यां बांधवानां सकाशाद्ददामि तेऽहंवपुषः काम्यतांच
भोक्ष्यन्ते वै सप्तर्ति वै शतानि गृहे तुभ्यमतिथीनां च नित्यम् ॥

वासुदेव उवाच—

एवं दत्वा वरान् देवो मम देवी च भारत ।
अंतर्हितः क्षणे तस्मिन् सगणो भीमपूर्वज ॥ ६ ॥
एतदत्यद्भुतं पूर्वं ब्राह्मणायातितेजसे ।
उपमन्यवे मया कृत्स्नं व्याख्यातं पार्थिवोत्तम ॥
नमस्कृत्वा तु स प्राह देवदेवाय सुव्रत ॥ १० ॥

उपमन्युरुवाच—

नास्ति शर्वसमो देवो नास्ति शर्वसमा गतिः ।
नास्ति शर्वसमो दाने नास्ति शर्वसमो रणे ॥ ११ ॥
इति श्रीमहाभारते अनुशा० आनुशासनिके पर्वणि
मेघवाहनोपाख्याने पञ्चदशोऽध्यायः ॥

प्रीति पूर्वक माता को प्रसन्न करने वाले, शांत चित्त, बड़े बुद्धिमान् और चतुर सौ पुत्र मैं आपसे मांगता हूं ।

उमा ने कहा ऐसा ही होगा । साथ ही यह भी कहा कि हे दिव्य प्रभाव वाले, मैं मिथ्या नहीं बोलती हूं । सोलह हजार स्त्रियां, उन स्त्रियों में प्रीति, अक्षय धन, बान्धवों की ओर से उत्तम प्रीति और शरीर की मनोहरता तुमको देती हूं । तेरे घर में सदैव सात हजार अतिथि भोजन करेंगे । वासुदेव जी बोले हे भरतर्षभ युधिष्ठिर इस रीति से यह देवता और उमादेवी मुझको वरदान देकर गणों समेत उसी क्षण अन्तर्द्धान हो गये । हे राजाओं में श्रेष्ठ ! प्रथम जब मैंने इस अद्भुत वृत्तान्त को बड़े तेजस्वी उपमन्यु ब्राह्मण के सम्मुख वर्णन किया तो उस उत्तम व्रती ब्राह्मण ने देवों के देव महेश्वर जी को नमस्कार करके कहा कि महादेव जी के समान कोई देवता नहीं, उनके समान कोई गति नहीं, उनके समान कोई दानी नहीं और युद्ध करने में भी शङ्कर जी के समान कोई नहीं है ॥ ११ ॥ इति ॥

अथ षोडशोऽध्यायः ।

उपमन्युरुवाच—

ऋषिरासीत्कृते तात तंडिरित्येव विश्रुतः ।
दशवर्षसहस्राणि तेन देवः समाधिना ॥ १ ॥
आराधितोऽभूद्भक्तेन तस्योदर्कं निशामय ।
स दृष्टवान्महादेव मस्तौषीच्चस्तवैर्विभुम् ॥ २ ॥
इति तंडिस्ततो योगात्परमात्मानमव्ययम् ।
चिंतयित्वा महात्मानमिदमाह सुविस्मतः ॥ ३ ॥
यं पठन्ति सदा सांख्याश्चिन्तयंति च योगिनः ।
परं प्रधानं पुरुषमधिष्ठातारमीश्वरम् ॥ ४ ॥
उत्पत्तौ च विनाशे च कारणं यं विदुर्बुधाः ।
देवासुरमुनीनां च परं यस्मान्न विद्यते ॥ ५ ॥
अजं तमहमीशानमनादिनिधनं प्रभुम् ।
अत्यन्त सुखिनं देवमनघं शरणं व्रजे ॥ ६ ॥
एवं ब्रुवन्नेव तदा ददर्श तपसां निधिम् ।
तमव्यय मनौपम्यमचिन्त्यं शाश्वतं ध्रुवम् ॥ ७ ॥

उपमन्यु बोले हे तात सतयुग में एक तण्डीनाम ऋषि विख्यात हुये उन्होंने समाधि और भक्ति के द्वारा दश हजार वर्ष तक शिवजी की आराधना की ॥ १ ॥ उसके फल के उदय को सुनो उन्होंने महादेवजी का प्रत्यक्ष दर्शन करके स्तोत्रों में स्तुति की ॥ २ ॥ अर्थात् उस तण्डी ऋषि ने अपने तप और योग के द्वारा उस सदैव अखण्ड रूप परमात्मा का ध्यान करके बड़े आश्चर्य को प्राप्त होकर कहा कि सांख्य मतवाले और योगीजन जिस प्रधान पुरुष अधिष्ठाता ईश्वर का सदैव स्तुति पाठ करते हैं और ध्यान करते हैं ॥ ३–४ ॥ ज्ञानियों ने जिसको उत्पत्ति नाश का हेतु रूप वर्णन किया है और देवता असुर व मुनियों में भी उससे श्रेष्ठ कोई नहीं है उस अजन्मा आदि अन्त रहित और निष्पाप ईश्वर की शरण लेता हूँ ॥ ५–६ ॥ ऐसा कहते हुए उस ऋषि ने उस रूपान्तररहित, तपोमूर्ति, अनुपम, अचिन्त्य और सब के आदि कूटस्थ पुरुष को देखा ॥ ७ ॥

निष्कलं सकलं ब्रह्म निर्गुणं गुणगोचरम् ।
योगिनां परमानन्दमक्षरं मोक्षसंज्ञितम् ॥ ८ ॥
मनोरिन्द्राग्निमरुतां विश्वस्य ब्रह्मणो गतिम् ।
अग्राह्यमचलं शुद्धं बुद्धिग्राह्यं मनोमयम् ॥ ९ ॥
दुर्विज्ञेयमसंख्येयं दुष्प्रापमकृतात्मभिः ।
योनिं विश्वस्य जगतस्तमसः परतः परम् ॥ १० ॥
यः प्राणवन्तमात्मानं ज्योतिर्जीवस्थितं मनः ।
तं देवं दर्शनाकाङ्क्षी बहून्वर्षगणानृषिः ॥
तपस्युग्रे स्थितो भूत्वा दृष्ट्वातुष्टावचेश्वरम् ॥ ११ ॥

तण्डिरुवाच—

पवित्राणां पवित्रस्त्वं गतिर्गतिमतांवर ।
अत्युग्रं तेजसांतेजस्तपसां परमं तपः ॥ १२ ॥
विश्वावसुहिरण्याक्ष पुरुहूत नमस्कृत ।
भूरिकल्याणदविभो परं सत्यं नमोस्तुते ॥ १३ ॥
जातीमरणभीरूनां यतीनां यततां विभो ।

वही योगियों का परम आनन्द, अविनाशी और मोक्ष स्वरूप है। वही मनु, इन्द्र, अग्नि, वायु, जगत और देवताओं का अवलम्बन है। वह अग्राह्य अचलरूप, शुद्ध, बुद्धि से मालूम होने योग्य और मनोमय है। कठिनता से जाना जा सकता है, असंख्येय है और अकृतात्मा लोगों को दुष्प्राप्य है। वह समस्त जगत् का उत्पत्तिस्थान है। तमोगुण के परे स्थित पुरुष पुराण और श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ देवता है। जो आत्मा को प्राणविशिष्ट करके उसमें आवृत्त जीव में मनोरूप ज्योतिस्वरूप से स्थिति रहता है, उसी देव के दर्शन की इच्छा में तण्डी ऋषि अनेक वर्ष पर्यन्त उग्र तपस्या करने के अनन्तर ईश्वर का दर्शन करके स्तुति करने लगे। तण्डी बोले—हे परमात्मन्! तुम गङ्गा आदि पवित्र पदार्थों से भी पवित्र और गतिमान् पुरुषों की परमगति हो, नेत्र आदि तेजस्वी पदार्थों के तेज अर्थात्, प्रकाशक और तपस्वियों की परम तपस्या हो। तुम विश्वावसु, हिरण्याक्ष और पुरुहूत द्वारा नमस्कृत हो। तुम मोक्ष देनेवाले हो, परम सत्य और जन्म मरण और भीरु यतमान यतियों के

निर्वाणद सहस्रांशो नमस्तेऽस्तु सुखाश्रय ॥ १४ ॥
ब्रह्मा शतक्रतुर्विष्णुर्विश्वेदेवा महर्षयः ।
न विदुस्त्वान्तु तत्त्वेन कुतो वेत्स्यामहे वयम् ॥ १५ ॥
त्वत्तः प्रवर्तते सर्वं त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
कालाख्यः पुरुषाख्यश्च ब्रह्माख्यश्च त्वमेव हि ॥
तनवस्ते स्मृतास्तिस्रः पुराणज्ञैः सुरर्षिभिः ॥ १६ ॥
अधिपौरुषमध्यात्ममधिभूताधिदैवतम् ।
अधिलोकाधि विज्ञानमधियज्ञस्त्वमेव हि ॥ १७ ॥
त्वां विदित्वात्मदेहस्थं दुर्विदं दैवतैरपि ।
विद्वांसो यान्ति निर्मुक्ताः परंभावमनामयम् ॥ १८ ॥
अनिच्छतस्तव विभो जन्ममृत्युरनेकशः ।
द्वारं त्वं स्वर्गमोक्षाणामाक्षेप्ता त्वं ददासि च ॥ १९ ॥

निर्वाणदाता हो। हे सहस्रांशु और सब सुखों के आधार तुम्हें नमस्कार है।

ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, विश्वेदेव, और ऋषि लोग भी तुम्हें यथार्थ रूप से नहीं जानते तब मैं तुम्हें किस प्रकार से जान सकूंगा! तुम से ही जगत उत्पन्न होता है और उत्पन्न होकर तुम्हीं में स्थित रहता है। तुम्हीं काल, तुम्हीं पुरुष और तुम्हीं ब्रह्म हो। पुराण जानने वाले ब्रह्मर्षि लोग तुम्हारे कालाख्य, पुरुषाख्य और ब्रह्माख्य अथवा ब्रह्मा विष्णु और रुद्र यह तीन रूप बतलाते हैं। शिर चरणादिमान् देह सम्बन्धी जो ज्ञान है वह आधिपौरुषरूप ज्ञान तुम्ही हो। देह में अधर होठ हनुरूप याग संधि विषयक जो विवेक उत्पन्न होता है वह अध्यात्मरूप विवेक तुम्हीं हो। देहारम्भक प्राण रुधिर और नेत्रादि इन्द्रियों को अवलम्बन करके जो ज्ञान होता है तुम्हीं वह अधिभूत और अधिदैवत हो, तुम्हीं अधिलोक में अधिविज्ञान आर अधीश्वर हो। विद्वान् पुरुष तुम्हें जिस शरीर में देवताओं से भी दुर्विज्ञेय जान कर निर्मोह होकर अनामय परम्भाव को प्राप्त होते हैं।

जो तुम्हें जानने का उद्योग नहीं करता उसका बारम्बार जन्म और मरण होता है। तुम स्वर्ग और मोक्ष के द्वार स्वरूप हो। तुम्हारो

त्वं वै स्वर्गश्च मोक्षश्च कामः क्रोधस्त्वमेव च ।
सत्वं रजस्तमश्चैव अधश्चोर्द्धं त्वमेवहि ॥ २० ॥
ब्रह्माभवश्च विष्णुश्च स्कन्द्रेन्द्रौ सविता यमः ।
वरुणेन्दुर्मनुर्धाता विधाता त्वं धनेश्वरः ॥ २१ ॥
भूर्वायुः सलिलोऽग्निश्च खंवाग्बुद्धिः स्थितिर्मतिः ।
कर्म सत्यानृते चोभे त्वमेवास्ति च नास्ति च ॥ २२ ॥
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च प्रकृतिभ्यः परं ध्रुवम् ।
विश्वाविश्वपरो भावश्चिन्त्याचिन्त्यस्त्वमेवहि ॥ २३ ॥
यच्चैतत् परमं ब्रह्म यच्चैतत् परमं पदम् ।
या गतिः साङ्ख्य योगानां स भवान्नात्र संशयः ॥ २४ ॥
नूनमद्य कृतार्थाःस्म नूनं प्राप्ताः सतां गतिम् ।
यां गतिं प्रार्थयन्तीह ज्ञाननिर्म्मल बुद्धयः ॥ २५ ॥
अहो मूढाः स्म सुचिरमिमं कालमचेतसा ।
यन्न विद्मः परं देवं शाश्वतं यं विदुर्बुधाः ॥ २६ ॥

ही कृपा से मनुष्य स्वर्ग और मोक्ष पाते हैं। तुम स्वर्ग, मोक्ष, काम, क्रोध, सत्वरज, तमोगुणरूप हो तुम्हीं अधः और ऊर्ध्व स्वरूप हो। तुम ब्रह्मा, रुद्र, विष्णु, कार्तिकेय, इन्द्र, सूर्य, यम, वरुण, चन्द्रमा, मनु, धाता, विधाता और कुबेर हो। तुम्हीं पृथ्वी, वायु, जल, अग्नि, आकाश, वचन, बुद्धि, स्थिति, मति और कर्म स्वरूप हो, तुम्हीं सत्य और मिथ्या दोनों, और तुम्हीं सत् और रज्जू सर्प की भांति असत् मालूम होते हो परन्तु स्वयं वैसे जगत कारण अज्ञानरूप से विद्यमान नहीं हो।

तुम्हीं इन्द्रियां रूप रस आदि इन्द्रियों के विषय, प्रकृति से भी श्रेष्ठ और निश्चल हो, तुम कार्य्य कारण भिन्न सत्तामात्र स्वरूप हो; तुम सोपाधिक रूप से चिन्तनीय और निरुपाधि भाव से अचिन्तनीय हो। जिसे परब्रह्म तथा परंपद कहते हैं वह तुमही हो; सांख्य मतावलम्बी और योगियों की परम गति हो इसमें सन्देह नहीं है; ज्ञान के सहारे जिसकी बुद्धि निर्म्मल हुई है वे जिस गति की अभिलाषा करते हैं, वही साधुओं की गति प्राप्त कर अब आज मैं निश्चय ही कृतार्थ होगया। पंडित लोग जिसे शाश्वत कहते हैं, उस परम देव को अब तक न जान कर मैं अवश्य ही अचेतन और मूढ़ था। भक्तों पर कृपा करने

सेयमासादिता साक्षात् त्वद्भक्तिर्जन्मभिर्मया ।
भक्तानुग्रह कृद्देवो यं ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ॥ २७ ॥
देवासुरमुनीनां तु यच्च गुह्यं सनातनम् ।
गुहायां निहितं ब्रह्म दुर्विज्ञेयं मुनेरपि ॥ २८ ॥
स एष भगवान् देवः सर्वकृत् सर्वतोमुखः ।
सर्वात्मा सर्वदर्शी च सर्वगः सर्ववेदिता ॥ २९ ॥
देहकृद्देहभृद्देही देहभुक् देहिनां गतिः ।
प्राणकृत् प्राणभृत् प्राणी प्राणदः प्राणिनां गतिः ॥ ३० ॥
अध्यात्मगतिरिष्टानां ध्यानिनामात्मवेदिनाम् ।
अपुनर्भवकामानां या गतिः सोऽयमीश्वरः ॥ ३१ ॥
अयं च सर्वभूतानां शुभाशुभगतिप्रदः ।
अयश्च जन्ममरणे विदध्यात् सर्वजन्तुषु ॥ ३२ ॥
अयं संसिद्धिकामानामृषीणां सिद्धिदः प्रभुः ।
भूराद्यान् सर्व भुवनानुत्पाद्य सदिवौकसः ॥
दधाति देवस्तनुभिरष्टाभिर्यो विभर्ति च ॥ ३३ ॥

वाले जिस देव के जानने से लोग अमृत लाभ करते हैं मैंने अनेक जन्म में उस देव के विषय में यह भक्ति लाभ की है। देवता असुर और मुनियों के हृदय कन्दर में स्थित जो गुह्य सनतान ब्रह्म मुनियों का भी दुर्विज्ञेय है यह वही भगवान है। यह देव सब पदार्थों का रचने वाला, सब प्राणियों की आत्मा, सर्वदर्शी, सर्वतोमुख, सर्वज्ञ और सर्वगामी है। यह देहकर्ता (यज्ञ आदि) देहपोषक (अन्नादि) देही (जीव) संहारकर्ता देहधारियों की गति, प्राण की उत्पत्ति और पालन करने वाला, प्राणी, प्राणदाता और प्राणियों की गति है। यज्ञ करने वालों को अध्यात्मगति और ध्याननिष्ठ आत्मज्ञ तथा अपुनर्भव की इच्छा करने वाले जीवन्मुक्त मनुष्यों की जो गति है वह वही ईश्वर है। यह सब प्राणियों को कर्म के अनुसार शुभाशुभ गति को देता है और यही सब जीवों के जन्म और मरण का विधान करता है सिद्ध-काम मनुष्यों का गम्यस्थान और ऋषियों को सिद्धि देने वाला प्रभु देवताओं के सहित पृथ्वी आदि सब लोकों को उत्पन्न करके आठ मूर्ति के द्वारा उनका धारण और पालन करता है। इसी से सब जगत उत्पन्न होता

अतः प्रवर्तते सर्वमस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
अस्मिंश्च प्रलयं याति अयमेकः सनातनः ॥ ३४ ॥
अयं स सत्यकामानां सत्यलोकः परं सताम् ।
अपवर्गश्च युक्तानां कैवल्यं चात्मवेदिनां ॥ ३५ ॥
अयं ब्रह्मादिभिः सिद्धैर्गुहायां गोपितः प्रभुः ।
देवासुरमनुष्याणामप्रकाशो भवेदिति ॥ ३६ ॥
तं त्वां देवासुरनरास्तत्त्वेन न विदुर्भवम् ।
मोहिताः खल्वनेनैव हृदिस्थेनाप्रकाशिना ॥ ३७ ॥
ये चैनं प्रतिपद्यन्ते भक्तियोगेन भाविताः ।
तेषामेवात्मनात्मानं दर्शयत्येष हृच्छयः ॥ ३८ ॥
यं ज्ञात्वा न पुनर्जन्ममरणञ्चापि विद्यते ।
यं विदित्वा परं वेद्यं वेदितव्यं न विद्यते ॥ ३९ ॥
यं लब्ध्वा परमं लाभं नाधिकं मन्यते बुधः ।
यां सूक्ष्मां परमां प्राप्तिं गच्छन्नव्ययमक्षयम् ॥ ४० ॥
यं सांख्या गुणतत्त्वज्ञाः सांख्यशास्त्रविशारदाः ।
सूक्ष्मज्ञानतराः सूक्ष्मं ज्ञात्वा मुच्यन्ति बन्धनैः ॥ ४१ ॥

है इसी में स्थिर रहता है और इसी में प्रलय के समय लीन होता है; केवल यह ईश्वर ही नित्य है ; अव्यभिचारी सत्य अर्थात् वेदोक्त कर्म्मफल स्वरूप जो स्वर्ग है उस स्वर्ग की इच्छा करने वाले साधुओं के ये ही केवल सत्य लोक हैं । यही योगियों के मोक्ष हैं । आत्मविद पुरुषों के केवलस्वरूप हैं । वह प्रभु देवता और मनुष्यों में अप्रकाशित रूप से रहता है इसीसे ब्रह्मा आदि मन्त्र व्याख्याता सिद्धों के द्वारा शास्त्र स्वरूप गुहा में गुण भाव से रक्खा गया है । इसी कारण देवता दानव और मनुष्य अज्ञानरूपी अन्धकार में मोहित होकर इस प्रभु का यथार्थ तत्त्व नहीं समझ पाते । जो लोग भक्तिभाव से ध्यान करके इनके दर्शन करने की इच्छा करते हैं यह हृदयरूपी गुहा में शयन करने वाला भगवान उन्हें स्वयं ही दर्शन देता है । जिसे जानने से फिर जन्म वा मृत्यु नहीं होती, जिस परम वेद्य परमेश्वर के जानने से फिर कुछ भी जानना शेष नहीं रहता, जिसे अव्यय और अविनाशी सूक्ष्म परममय श्री पाकर विद्वान पुरुष फिर किसी लाभ को अधिक नहीं समझते ज्ञान से लिङ्ग अर्थात प्रकृति को पार करने वाले, सांख्य शास्त्र के गुण तत्वों को जाननेवाले

यञ्च वेदविदोवेद्यं वेदान्ते च प्रतिष्ठितम् ।
प्राणायामपरा नित्यं यं विशन्ति जपन्ति च ॥ ४२ ॥
ओंकाररथ भारुह्य ते विशन्ति महेश्वरम् ।
अयं स देवयानानामादित्यो द्वारमुच्यते ॥ ४३ ॥
अयं च पितृयानानां चन्द्रमा द्वारमुच्यते ।
एष काष्ठादिशश्चैव सम्वत्सर युगादि च ॥ ४४ ॥
दिव्यादिव्यः परो लाभो अयने दक्षिणोत्तरे ।
एनं प्रजापतिः पूर्वमाराध्य बहुभिः स्तवैः ।
प्रजार्थं वरयामास नीललोहितसंज्ञितम् ॥ ४५ ॥
ऋगुभिर्यमनुशासन्ति तत्त्वे कर्मणि बह्वृचाः ।
यजुर्भिर्यं त्रिधा वेद्यं जुह्वत्यध्वर्य्यवोऽध्वरे ॥ ४६ ॥
सामभिर्यञ्च गायन्ति सामगाः शुद्धबुद्धयः ।
ऋतं सत्यं परं ब्रह्म स्तुवन्त्याथर्वणा द्विजाः ।
यज्ञस्य परमा योनिः पतिश्चायं परः स्मृतः ॥ ४७ ॥

विद्वान लोग उस सूक्ष्म ज्ञान को प्राप्तकर बन्धनों से छूट जाते हैं। वेद जानने वाले विद्वान लोग जिसे वेद्य कहकर जानते हैं जो वेदान्त शास्त्र के बीच प्रतिष्ठित होरहा है। सदा प्राणायाम में रत रहने वाले मनुष्य इसी में प्रवेश करते हैं तथा इसका जप करते हैं। और वे लोग ओंकार रूपी रथ में चढ़कर इसी परमेश्वर में प्रवेश किया करते हैं। यही देवयान पथ का आदित्य स्वरूप द्वार और पितृयान का चन्द्रमारूप द्वार कहा गया है। यही काष्ठा दिशा संवत्सर और युग आदि हैं।

यही दिव्यादिव्य अर्थात् इन्द्र और सार्व्वभौम लाभ तथा दक्षिणायन तथा उत्तरायण स्वरूप है। पहिले प्रजापति ने इसी नीललोहित की अनेक प्रकार स्तोत्रों से आराधना करके सृष्टि करने के लिये वर मांगा था। ब्रह्मज्ञ ब्राह्मण लोग अनारोपितरूप तत्व का ऋक् मन्त्रों से वर्णन करते हैं। यजुर्वेद जाननेवाले अध्वर्य्युगण श्रौतस्मार्त और ध्यान इन त्रिविध यज्ञों से जानने योग्य यजुर्वेदमय महेश्वर को यजुर्मन्त्र द्वारा आहुति देते हैं। शुद्ध बुद्धिवाले सामवेदी ब्राह्मण सामवेद के मन्त्रों से उसका यश गाते हैं तथा अथर्ववेदी ब्राह्मण यज्ञ के फल सत् स्वरूप इस परब्रह्म की स्तुति किया करते हैं। ये ही यज्ञ के आदि कारण और ईश्वर कह के स्मरण किये

रात्र्यहः श्रोत्रनयनः पक्षमासशिरोभुजः ।
ऋतुर्वीर्य्यस्तपो धैर्य्यो ह्यब्दगुह्योरुपादवान् ॥ ४८ ॥
मृत्युर्यमो हुताशश्च कालः संहारवेगवान् ।
कालस्य परमा योनिः कालश्चायं सनातनः ॥ ४९ ॥
चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रौ ग्रहाश्च सह वायुना ।
ध्रुवः सप्तर्षयश्चैव भुवनाः सप्त एव च ॥ ५० ॥
प्रधानं महदव्यक्तं विशेषान्तं सवैकृतम् ।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्य्यन्तं भूतादिसदसच्च यत् ॥ ५१ ॥
अष्टौ प्रकृतयश्चैव प्रकृतिभ्यश्च यः परः ।
अस्य वेदस्य यद्भागं कृत्स्नं सम्परिवर्तते ॥ ५२ ॥
एतत् परममानन्दं यत्तच्छाश्वतमेव च ।
एषा गतिर्विरक्तानामेष भावः परः सताम् ॥ ५३ ॥
एतत् पदमनुद्विग्नमेतद् ब्रह्म सनातनम् ।
शास्त्रवेदाङ्गविदुषामेतद्ध्यानं परं पदम् ॥ ५४ ॥
इयं सा परमा काष्ठा इयं सा परमा कला ।
इयं सा परमा सिद्धिरियं सा परमा गतिः ॥ ५५ ॥

जाते हैं। दिन और रात इनकी आंखें और कान स्वरूप हैं। पक्ष और महीनें उनके शिर तथा भुजाएँ हैं, ऋतु इनका वीर्य, तपस्या इनका धैर्य और वर्ष उनका गुह्य, जँघा और चरण हैं। ये ही मृत्यु, यम, अग्नि, संहार वे भगवान काल, काल के उत्पति स्थान और सनातन काल स्वरूप हैं, ये ही नक्षत्र सहित चन्द्रमा और सूर्य, वायु के सहित समस्त ग्रह ध्रुव, सप्तर्षि और सातों भुवन स्वरूप हैं।

ये ही प्रधान महत् अव्यक्त सवैकृत विशेषान्त ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब पर्य्यन्त्य सद्रूप भूमि जल अग्नि और असद्रूप वायु आकाश तथा मन बुद्धि अहंकार इन अष्ट प्रकृति स्वरूप और प्रकृति से भी परे मायावी है। इस मायावी देव के अंश से समस्त जगत् रूप प्रपंच उत्पन्न हुआ है। ये ही शाश्वत परमानन्द स्वरूप हैं तथा विरक्तों की गति और साधुओं के परम भाव हैं। येही शान्तप्रद स्वरूप तथा सनातन ब्रह्म हैं। शास्त्र और वेदाङ्ग जानने वाले पुरुषों के येही परमपद और उत्कृष्ट ध्यान स्वरूप हैं। येही श्रुति प्रसिद्ध परम काष्ठा हैं, येही परम कला हैं, येही परम सिद्धि

इयं सा परमा शान्तिरियं सा निर्वृतिः परा।
यं प्राप्य कृतकृत्याः स्म इत्यमन्यन्त योगिनः ॥ ५६ ॥
इयं तुष्टिरियं सिद्धिरियं श्रुतिरियं स्मृतिः।
अध्यात्मगतिरिष्टानां विदुषां प्राप्तिरव्यया ॥ ५७ ॥
यजतां कामयानानां मखैर्विपुलदक्षिणैः।
या गतिर्यज्ञशीलानां सा गतिस्त्वं न संशयः ॥ ५८ ॥
सम्यग्योगजपैः शान्तिनियमैर्देहतापनैः।
तप्यतां या गतिर्देव परमा सा गतिर्भवान् ॥ ५९ ॥
कर्मन्यासकृतानाञ्च विरक्तानां ततस्ततः।
या गतिर्ब्रह्म सदने सा गतिस्त्वं सनातन ॥ ६० ॥
अपुनर्भव कामानां वैराग्ये वर्त्तताञ्चया।
प्रकृतीनां लयानाञ्च सा गतिस्त्वं सनातन ॥ ६१ ॥
ज्ञानविज्ञानयुक्तानां निरुपाख्या निरञ्जना।
कैवल्या या गतिर्देव परमा सा गतिर्भवान् ॥ ६२ ॥

और परम गति हैं, येही परम शांति तथा परम निर्वृत्ति हैं, योगी लोग इन्हीं को पाकर अपने को कृतकृत्य समझते हैं, ये ही तुष्टि, सिद्धि, श्रुति (अर्थात् श्रोत्रादि जनित अनुभूति) और स्मृति स्वरूप हैं। ये ही योगियों की अध्यात्मगति अर्थात् (प्रत्यक्प्रावण्य रूप वाली) गतिस्वरूप हैं और येही विद्वान पुरुषों की अपुनरावर्त्तिनी प्राप्ति स्वरूप हैं।

बहुत सी दक्षिणाओं के युक्त यज्ञ करने से यजनशील कामना वाले मनुष्यों को स्वर्गादि लोक रूप जो गति प्राप्त होती है वह गति निःसन्देह तुम्हीं हो। हे देव! पूरी रीति से जप योग शांति और देह को तपाने वाले कठोर नियमों को पालन करके तपस्या करने वाले मनुष्यों को जो गति प्राप्त होती है वह परमगति तुम्हीं हो। हे सनातन! निवृत्ति वाले विरक्त पुरुषों की ब्रह्मलोक रूप जो गति होती है, वह गति तुम्हीं हो। जो लोग पुनर्जन्म की कामना नहीं करते और सदा वैराग्य अवलम्बन किया करते हैं उन मुमुक्षु जनों को अपुनरावृत्ति की जो गति प्राप्त होती है हे सनातन! वह गति तुम्हीं हो। हे देव! ज्ञान विज्ञान से युक्त पुरुषों की निरूपाख्य निरञ्जन कैवल्य रूपी जो गति हुआ करती है वह परम गति तुम्हीं हो। हे विभु! वेद, शास्त्र और पुराणों में कही हुई

वेदशास्त्रपुराणोक्ताः पञ्चैता गतयः स्मृताः ।
त्वद्प्रसादाद्धि लभ्यन्ते न लभ्यन्तेऽन्यथा विभो ॥ ६३ ॥
इति तंडिस्तपोराशि स्तुष्टावेशानमात्मना ।
जगौ च परमं ब्रह्म यत् पुरा लोककृज्जगौ ॥ ६४ ॥

उपमन्युरुवाच :—

एवं स्तुतो महादेवस्तण्डिना ब्रह्मवादिना ।
उवाच भगवान्देव उमया सहितः प्रभुः ॥ ६५ ॥
ब्रह्माशतक्रतुर्विष्णुर्विश्वेदेवा महर्षयः ।
न विदुस्त्वामिति ततस्तुष्टः प्रोवाच तं शिवः ॥ ६६ ॥

श्रीभगवानुवाच :—

अक्षयश्चाव्ययश्चैव भविता दुःखवर्जितः ।
यशस्वी तेजसा युक्तो दिव्यज्ञानसमन्वितः ॥ ६७ ॥
ऋषीणामभिगम्यश्च सूत्रकर्ता सुतस्तव ।
मत्प्रसादाद्द्विजश्रेष्ठ भविष्यति न संशयः ॥ ६८ ॥
कं वा कामं ददाम्यद्य ब्रूहि यद्वत्स कांक्षसे ।
प्राञ्जलिः स उवाचेदं त्वयि भक्तिर्दृढास्तु मे ॥ ६९ ॥

जो पांच प्रकार की गतियां निर्दिष्ट हैं वे सब तुम्हारी कृपा से प्राप्त होती हैं । अन्यथा प्राप्त नहीं हो सकतीं । तपस्वी श्रेष्ठ तण्डी मुनि ने स्वयं इसी प्रकार ईशान देव की स्तुति की थी । पहिले समय में प्रजापति ने जिस प्रकार पर ब्रह्म का यश गाया था इन्होंने भी उनका उसी प्रकार यश गान किया ।

उपमन्यु बोले देव प्रभु ब्रह्मवादी तण्डिमुनि के इस प्रकार स्तुति करने पर ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, विश्वदेव और महर्षि लोग भी तुम्हें नहीं जानते इसी वचन से प्रसन्न होकर उमा सहित भगवान् महादेव प्रभु उनसे कहने लगे ।

भगवान् बोले हे द्विजश्रेष्ठ ! तुम मेरे प्रसाद से अक्षय, अव्यय, दुःखरहित, यशस्वी और दिव्य ज्ञान से युक्त होगे और तुम्हारा पुत्र ऋषियों का अभिगम्य तथा सूत्रकार होगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। हे तात ! कहो तुम्हें कौन सी अभिलाषा है । मैं इस समय तुम्हें पूर्ण करूँगा । तण्डिमुनि हाथ जोड़कर यह वचन बोले हे देव ! तुममें मेरी दृढ़ भक्ति हो ।

उपमन्युरुवाचः—

एतान् दत्वा वरान् देवो वन्द्यमानः सुरर्षिभिः ।
स्तूयमानश्च विबुधैस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ७० ॥
अन्तर्हिते भगवति सानुगे यादवेश्वर ।
ऋषिराश्रममागम्य ममैतत्प्रोक्तवानिह ॥ ७१ ॥
यानि च प्रथितान्यादौ तण्डिराख्यातवान् मम ।
नामानि मानवश्रेष्ठ तानि त्वं श्रृणु सिद्धये ॥ ७२ ॥
दशनाम सहस्राणि देवेष्वाह पितामहः ।
शर्वस्य शास्त्रेषु तथा दशनाम शतानि च ॥ ७३ ॥
गुह्यानीमानि नामानि तण्डिर्भगवतोऽच्युत ।
देवप्रसादाद्देवेश पुरा प्राह महात्मने ॥ ७४ ॥

इत्यनुशासनपर्वणि आनुशासनिकपर्वणि मेघवाहनोपाख्याने
षोडशोऽध्यायः

उपमन्यु बोले देवर्षियों से वन्दनीय और देवताओं से स्तूयमान महादेव तण्डिमुनि को यह वर देकर उसी ही स्थान में अन्तर्द्धान हो गये। हे यादवेश्वर ! जब भगवान अनुचरों सहित अन्तर्द्धान होगए तब महर्षि तण्डि ने इस आश्रम में आकर मुझ से वह सब वृत्तान्त कहा था। पहिले जो कुछ विदित हुआ था तण्डीमुनि ने सब मुझ से कहा। हे मनुजश्रेष्ठ ! उन्हों ने भगवान के जिन नामों का वर्णन किया था तुम सिद्धि के निमित्त उन सब को सुनो। पितामह ने देवताओं के समीप भगवान के दश हजार नामोंका वर्णन किया था परन्तु शास्त्र में महादेव के एक हजार नाम विख्यात हैं। हे अच्युत ! हे देवेश ! पूर्व समय में तण्डिमुनि ने इन गुप्त नामों को उन्हीं की कृपा से महानुभाव महेश्वर के निकट कहा था।

॥ इति षोडशोऽध्यायः ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः ।

वासुदेव उवाच

ततः स प्रयतो भूत्वा मम तात युधिष्ठिरः ।
प्रांजलिः प्राह विप्रर्षिर्नामसंग्रहमादितः ॥ १ ॥

उपमन्युरुवाच

ब्रह्मप्रोक्तैर्ऋषिप्रोक्तैर्वेदवेदांगसंभवैः ।
सर्वलोकेषु विख्यातं स्तुत्यंस्तोष्यामि नामभिः ॥ २ ॥
महद्भिर्विहितैः सत्यैः सिद्धैः सर्वार्थसाधकैः ।
ऋषिणा तंडिना भक्त्या कृतैर्वेदकृतात्मना ॥ ३ ॥
यथोक्तैः साधुभिः ख्यातैर्मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
प्रवरं प्रथमं स्वर्ग्यं सर्वभूतहितं शुभम् ॥ ४ ॥
श्रुतैः सर्वत्र जगति ब्रह्मलोकावतारितैः ।
सत्यैस्तत्परमं ब्रह्म ब्रह्मप्रोक्तं सनातनम् ॥ ५ ॥
वक्ष्ये यदुकुलश्रेष्ठ श्रृणुष्वावहितो मम ।
वरयैनं भवं देवं भक्तस्त्वं परमेश्वरम् ॥ ६ ॥

वासुदेवजी बोले कि हे तात युधिष्ठिर इसके बाद ब्रह्मर्षि उपमन्यु ने सावधान हो हाथ जोड़ कर शिवजी के सहस्रनाम मेरे सम्मुख वर्णन किये। उपमन्यु ऋषि बोले हे वासुदेव! मैं ब्रह्माजी के और ऋषियों के कहे हुये वेदवेदान्त के नामों से स्तुति के योग्य और सब लोकों में विख्यात परमेश्वर की स्तुति करता हूं। महर्षियों से विचार किये हुये सत्य शुद्ध और सब मनोरथों को सिद्ध करने वाले, वेद में मन लगाने वाले तंडीऋषि की भक्ति से वेद में से निकाले हुये, तत्वदर्शी मुनियों से प्रशंसा किये हुये, साधुओं के कहे हुये और ब्रह्मलोक से आये हुए सत्य नामों से उस अत्यन्त श्रेष्ठ सबके आदि, स्वर्ग के दाता, सर्वजीव हितकारी, शुद्ध चैतन्यरूप और सर्वव्यापी आर वेद में कहे हुए सनातन ब्रह्मरूप देवता की स्तुति करता हूँ। हे यदुनन्दन, इस संसार के उत्पत्ति स्थान परमेश्वर के तुम परमभक्त हो इससे तुमको सुनाता हूं सावधान होकर ध्यानपूर्वक श्रवण करो। शिवजी की

तेनतेश्रावयिष्यामि यत्तद्ब्रह्म सनातनम् ।
न शक्यं विस्तरात्कृत्स्नं वक्तुं सर्वस्य केनचित् ॥ ७ ॥
युक्तेनापि विभूतीनामपि वर्षशतैरपि ।
यस्यादिर्मध्यमंतश्च सुरैरपि न गम्यते ॥ ८ ॥

कस्तस्य शक्नुयाद्वक्तुं गुणान् कार्त्स्न्येन माधव ।
किं तु देवस्य महतः संक्षिप्तार्थपदाक्षरम् ॥ ९ ॥

शक्तितश्चरितं वक्ष्ये प्रसादात्तस्य धीमतः ।
अप्राप्य तु ततो ऽनुज्ञां न शक्यः स्तोतुमीश्वरः ॥ १० ॥

यदा तेनाभ्यनुज्ञातः स्तुतो वै स तदा मया ।
अनादिनिधनस्याहं जगद्योनेर्महात्मनः ॥ ११ ॥

नाम्नां कंचित्समुद्देशं वक्ष्याम्यव्यक्तयोनिनः ।
वरदस्य वरेण्यस्य विश्वरूपस्य धीमतः ॥ १२ ॥

शृणु नाम्नां चयं कृष्ण यदुक्तं पद्मयोनिना ।
दशनाम सहस्राणि यान्याह प्रपितामहः ॥ १३ ॥

तानि निर्मथ्य मनसा दध्नो घृतमिवोद्धृतम् ।
गिरेः सारं यथा हेम पुष्पसारं यथा मधु ॥ १४ ॥

विभूतियों का पूरा २ वर्णन बड़े २ योगियों द्वारा भी हजारों वर्ष में भी नहीं हो सकता। हे माधवजी जिसका आदि मध्य अन्त देवताओं से भी नहीं जाना जा सकता उनके सम्पूर्ण गुणों को दूसरा कौन व्यक्ति विस्तार के साथ कह सकेगा । उन्हीं देवेश्वर की कृपासे यथाशक्ति संक्षेप में महादेव जी के चरित्रों का वर्णन करता हूँ उनकी कृपा और आज्ञा के विना और कोई कहने को समर्थ नहीं है । संसार के उत्पत्ति स्थान, वरदायी, श्रेष्ठ, ज्ञानी और विश्वरूप के नामों का कुछ भाग वर्णन करता हूँ । हे श्रीकृष्ण जी इन ब्रह्माजी से कहे हुए दश हजार नामों को मन से मथकर एक हजार आठ नामरूपी ऐसा सार निकाला है जैसा कि दही का सार घृत, पर्व्वत का सार सोना, फूल का सार शहद होता है और जैसे कि घृत का सार मण्ड होता है । यह सार सब पापों को दूर करने वाला, चारों वेदों से युक्त, बड़े उपाय से सिद्ध करने योग्य और बड़े सावधान बुद्धिवाले

घृतात्सारं यथामण्डस्तथैतत्सारमुद्धृतम् ।
सर्वपापापहमिदं चतुर्वेदसमन्वितम् ॥ १५ ॥
प्रयत्नेनाधिगंतव्यं धार्यं च प्रयतात्मना ।
मांगल्यं पौष्टिकं चैव रक्षोघ्नं पावनं महत् ॥ १६ ॥
इदं भक्ताय दातव्यं श्रद्दधानास्तिकायच ।
नाश्रद्दधानरूपाय नास्तिकाया जितात्मने ॥ १७ ॥
यश्चाभ्यसूयते देवं कारणात्मानमीश्वरम् ।
स कृष्ण नरकं याति सह पूर्वैः सहात्मजैः ॥ १८ ॥
इदं ध्यानमिदं योगमिदं ध्येयमनुत्तमम् ।
इदं जप्यमिदं ज्ञानं रहस्यमिदमुत्तमम् ॥ १६ ॥
यं ज्ञात्वा अंतकालेपि गच्छेत परमां गतिम् ।
पवित्रं मंगलं मेध्यं कल्याणमिदमुत्तमम् ॥ २० ॥
इदं ब्रह्मा पुरा कृत्वा सर्वलोकपितामहः ।
सर्वस्तवानां राजत्वे दिव्यानां समकल्पयत् ॥ २१ ॥
तदाप्रभृति चैवायमीश्वरस्य महात्मनः ।
स्तवराज इति ख्यातो जगत्यमरपूजितः ॥ २२ ॥
ब्रह्मलोकादयं स्वर्गे स्तवराजोऽवतारितः ।

पुरुष से धारण करने योग्य है । वह मंगल का दाता, बुद्धिकर्ता, पौष्टिक, राक्षसों का नाश कर्त्ता और परम पवित्र करने वाला है इसे श्रद्धावान्, आस्तिक और भक्तों को सुनाना चाहिये और अश्रद्धावान् नास्तिक और अजितेन्द्रिय को कभी न देना चाहिये ॥ १७ ॥ हे कृष्णजी जो पुरुष इस कारण और आत्मारूप अविनाशी ईश्वर की निन्दा करता है वह अपने पूर्वजों और संतान समेत नरकगामी होता है ॥ १८ ॥ यही उत्तम ध्यान, योग और ध्येय है इससे अधिक दूसरा नहीं है । यही जप के योग्य, ज्ञान, उत्तम रहस्य, पापों का नाश करने वाला, मङ्गलरूप यज्ञादि का फलदेनेवाला, कल्याण रूप, सर्वोत्तम, अन्त समय पर भी जानने से परमगति को देनेवाला है ॥ १९ ॥ २० ॥ पूर्व समय में सब लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने इसको निर्माण करके सब दिव्य स्तोत्रों के ऊपर राज पदवी दी है । तब से लेकर परमात्मा ईश्वर का

यतस्तंडिः पुरा प्राप तेन तंडि कृतोऽभवत् ॥ २३ ॥
स्वर्गाच्चैवात्र भूर्लोकं तंडिना ह्यवतारितः ।
सर्वमंगलमांगल्यं सर्वपाप प्रणाशनम् ॥ २४ ॥
निगदिष्ये महाबाहो स्तवानामुत्तमं स्तवम् ।
ब्रह्मणामपि यद्ब्रह्म पराणामति यत्परम् ॥ २५ ॥
तेजसामपि यत्तेजस्तपसामपि यत्तपः ।
शान्तानामपि यः शान्तो द्युतीनामपि याद्युतिः ॥ २६ ॥
दान्तानामपियो दांतो धीमतामपि या च धीः ।
देवानामपि यो देव ऋषीणामपि यस्त्वृषिः ॥ २७ ॥
यज्ञानामपि यो यज्ञः शिवानामपि यः शिवः ।
रुद्राणामपि यो रुद्रः प्रभा प्रभवतामपि ॥ २८ ॥
योगिनामपि यो योगी कारणानां च कारणम् ।
यतो लोकाः संभवन्ति न भवन्ति यतः पुनः ॥ २९ ॥
सर्वभूतात्मभूतस्य हरस्यामिततेजसः ।

यह स्तोत्र देवताओं से पूजित होकर स्तवराज नाम से प्रसिद्ध हुआ स्तवराज पूर्व समय में ब्रम्ह लोक से स्वर्ग में आया। और स्वर्गलोक से तण्डीऋषि के द्वारा पृथ्वी पर लाया गया इसी से यह यह स्तोत्र तण्डिकृत कहलाता है। यह मंगलों का भी मंगल करने वाला सर्वपापमोचन है। हे महाबाहु, सब स्तोत्रों में उत्तम इस स्तोत्रराज को वर्णन करता हूँ। यह वेदों का भी वेद, सर्वोत्तमम न वाणी से परे जो मनुष्य है उससे भी परे महापुरुष, नेत्रादि सब तेजों का भी तेज, तपों का भी तप, शांतों का भी शान्त अर्थात् मोक्षरूप, प्रकाश का भी पुरुष अर्थात् साक्षीरूप ज्ञान है। जितेन्द्रियों में भी महाजितेन्द्रिय, ज्ञानों का भी ज्ञान अर्थात् अनुभव रूप आत्मा, देवताओं का भी देवता, ऋषियों का भी ऋषि, यज्ञों का भी यज्ञ, कल्याणों का भी कल्याण, रुद्रों का भी रुद्र, ऐश्वर्यों का भी ऐश्वर्य, योगियों और ब्रह्मा आदि का भी योग अर्थात् ध्यानयोग्य और अव्यक्तादि कारणों का भी कारण शुद्धब्रह्म है। इसीसे जीव उत्पन्न होते हैं और लय होजाते हैं।

अष्टोत्तरसहस्रन्तु नाम्नां शर्वस्य मे शृणु ।
यच्छ्रुत्वा मनुजव्याघ्र सर्वान्कामानवाप्स्यसि ॥ ३० ॥

उस सब जीवमात्रों के आत्मा बड़े तेजस्वी, नाशकर्त्ता हर के एक हजार आठ नामों को मैं कहता हूँ। हे पुरुषोत्तम! जिसके सुनने से तुम सब अभीष्ट पदार्थों को प्राप्त करोगे।

स्थिरः स्थाणुः प्रभुर्भीमः प्रवरो वरदो वरः ।
सर्वात्मा सर्वविख्यातः सर्वः सर्वकरो भवः ॥ ३१ ॥
जटी चर्मी शिखण्डी च सर्वाङ्गः सर्वभावनः ।
हरश्च हरिणाक्षश्च सर्वभूतहरः प्रभुः ॥ ३२ ॥
प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च नियतः शाश्वतो ध्रुवः ।
श्मशानवासी भगवान् खचरो गोचरोऽर्दनः ॥ ३३ ॥
अभिवाद्यो महाकर्मा तपस्वी भूतभावनः ।
उन्मत्तवेषप्रच्छन्नः सर्वलोकप्रजापतिः ॥ ३४ ॥
महारूपो महाकायो वृषरूपो महायशाः ।
महात्मा सर्वभूतात्मा विश्वरूपो महाहनुः ॥ ३५ ॥
लोकपालोऽन्तर्हितात्मा प्रसादो हयगर्दभिः ।
पवित्रं च महांश्चैव नियमो नियमाश्रितः ॥ ३६ ॥
सर्वकर्मा स्वयंभूत आदिरादिकरो निधिः ।
सहस्राक्षो विशालाक्षः सोमो नक्षत्रसाधकः ॥ ३७ ॥
चन्द्रः सूर्यः शनिः केतुर्ग्रहो ग्रहपतिर्वरः ।
अत्रिरऽया नमस्कर्ता मृगबाणार्पणोऽनघः ॥ ३८ ॥
महातपा घोरतपा अदीनो दीनसाधकः ।
संवत्सरकरो मंत्रः प्रमाणं परमं तपः ॥ ३९ ॥
योगी योज्यो महाबीजो महारेता महाबलः ।
सुवर्णरेताः सर्वज्ञः सुबीजो बीजवाहनः ॥ ४० ॥
दशबाहुस्त्वनिमिषो नीलकण्ठ उमापतिः ।
विश्वरूपः स्वयं श्रेष्ठो बलवीरोऽबलो गणः ॥ ४१ ॥
गणकर्ता गणपतिर्दिग्वासाः काम एव च ।
मंत्रवित्परमो मंत्रः सर्वभावकरो हरः ॥ ४२ ॥

कमण्डलुधरो धन्वी बाणहस्तः कपालवान् ।
अशनीशतघ्नो खड्गी पट्टिशी चायुधी महान् ॥ ४३ ॥
स्रुवहस्तः सुरूपश्च तेजस्तेजस्करो निधिः ।
उष्णीषी च सुवक्त्रश्च उदग्रो विनतस्तथा ॥ ४४ ॥
दीर्घश्च हरिकेशश्च सुतीर्थः कृष्ण एव च ।
शृगालरूपः सिद्धार्थो मुण्डः सर्वशुभंकरः ॥ ४५ ॥
अजश्च बहुरूपश्च गंधधारी कपर्द्यपि ।
ऊर्ध्वरेताऊर्ध्वलिंग ऊर्ध्वशायी नभःस्थलः ॥ ४६ ॥
त्रिजटी चीरवासाश्च रुद्रःसेनापतिर्विभुः ।
अहश्चरो नक्तंचरस्तिग्ममन्युः सुवर्चसः ॥ ४७ ॥
गजहा दैत्यहा कालो लोकधाता गुणाकरः ।
सिंहशार्दूलरूपश्च आर्द्रचर्माम्बरावृतः ॥ ४८ ॥
कालयोगी महानादः सर्वकामश्चातुष्पथः ।
निशाचरः प्रेतचारी भूतचारी महेश्वरः ॥ ४९ ॥
बहुभूतो बहुधरः स्वर्भानुरमितो गतिः ।
नृत्यप्रियो नृत्यनर्तो नर्तकः सर्वलालसः ॥ ५० ॥
घोरो महातपाः पाशो नित्यो गिरिरुहो नभः ।
सहस्रहस्तो विजयो व्यवसायो ह्यतंद्रितः ॥ ५१ ॥
अधर्षणो धर्षणात्मा यज्ञहा कामनाशकः ।
दक्षयागापहारीच सुसहो मध्यमस्तथा ॥ ५२ ॥
तेजोपहारी बलहा मुदितोऽर्थोजितोऽवरः ।
गम्भीरघोषो गम्भीरो गम्भीरबलवाहनः ॥ ५३ ॥
न्यग्रोधरूपो न्यग्रोधो वृक्षकर्णस्थितिर्विभुः ।
सुतीक्ष्णदशनश्चैव महाकायो महाननः ॥ ५४ ॥
विष्वक्सेनो हरिर्यज्ञः संयुगापीडवाहनः ।
तीक्ष्णतापश्च हर्यश्वः सहायः कर्मकालवित् ॥ ५५ ॥
विष्णुप्रसादितो यज्ञः समुद्रो वडवामुखः ।
हुताशनसहायश्च प्रशांतात्मा हुताशनः ॥ ५६ ॥
उग्रतेजा महातेजा जन्यो विजयकालवित् ।
ज्योतिषामयनं सिद्धिः सर्वविग्रह एव च ॥ ५७ ॥

शिखी मुंडी जटी ज्वाली मूर्तिजो मूर्द्धगो बली ।
वेणवी पणवी ताली खली कालकटंकटः ॥ ५८ ॥
नक्षत्रविग्रहमतिर्गुणबुद्धिर्लयोऽगमः ।
प्रजापतिर्विश्ववाहुर्विभागः सर्वगोऽमुखः ॥ ५९ ॥
विमोचनः सुसरणो हिरण्यकवचोद्भवः ।
मेढ्रजो वलचारी च महीचारीस्रुतस्तथा ॥ ६० ॥
सर्वतूर्यनिनादी च सर्वातोद्य परिग्रहः ।
व्यालरूपो गुहावासी गुहोमाली तरङ्गवित् ॥ ६१ ॥
त्रिदशस्त्रिकालधृक्कर्म सर्वबन्धविमोचनः ।
वन्धनस्त्वसुरेन्द्राणां युधि शत्रुविनाशनः ॥ ६२ ॥
सांख्यप्रसादो दुर्वासाः सर्वसाधुनिषेवितः ।
प्रस्कन्दनो विभागज्ञो अतुल्यो यज्ञभागवित् ॥ ६३ ॥
सर्ववासः सर्वचारी दुर्वासा वासवोऽमरः ।
हैमो हेमकरो यज्ञः सर्वधारी धरोत्तमः ॥ ६४ ॥
लोहिताक्षो महाक्षश्च विजयाक्षो विशारदः ।
संग्रहो निग्रहःकर्त्ता सर्पचीरनिवासनः ॥ ६५ ॥
मुख्योऽमुख्यश्च देहश्च काहलिः सर्वकामदः ।
सर्वकालप्रसादश्च सुवलो वलरूपधृक् ॥ ६६ ॥
सर्वकामवरश्चैव सर्वदः सर्वतोमुखः ।
आकाशनिर्विरूपश्च निपाती ह्यवशः खगः ॥ ६७ ॥
रौद्ररूपांशुरादित्यो वहुरश्मिः सुवर्चसी ।
वसुवेगो महावेगो मनोवेगो निशाचरः ॥ ६८ ॥
सर्ववासीश्रियावासी उपदेशकरोऽकरः ।
मुनिरात्मनिरालोकः संभग्नश्चसहस्रदः ॥ ६९ ॥
पक्षी च पक्षरूपश्च अतिदीप्तो विशांपतिः ।
उन्मादो मदनः कामो ह्यश्वत्थोऽर्थकरो यशः ॥ ७० ॥
वामदेवश्च वामश्च प्राग्दक्षिणश्च वामनः ।
सिद्धयोगीमहर्षिश्च सिद्धार्थः सिद्धसाधकः ॥ ७१ ॥
भिक्षुश्च भिक्षुरूपश्च विपणो मृदुरव्ययः ।
महासेनो विशाखश्च षष्टिभागो गवांपतिः ॥ ७२ ॥

वज्रहस्तश्च विष्कंभी चमूस्तंभन एव च।
वृत्तावृत्तकरस्तालो मधुर्मधुकलोचनः ॥ ७३ ॥
वाचस्पत्यो वाजसनो नित्यमाश्रमपूजितः।
ब्रह्मचारी लोकचारी सर्वचारी विचारवित् ॥ ७४ ॥
ईशान ईश्वरः कालो निशाचारी पिनाकवान्।
निमित्तस्थो निमित्तं च नन्दिर्नन्दिकरो हरिः ॥ ७५ ॥
नंदीश्वरश्च नंदी च नंदनो नंदवर्द्धनः।
भगहारी निहंता च कालो ब्रह्मा पितामहः ॥ ७६ ॥
चतुर्मुखो महालिंगश्चारुलिंगस्तथैव च।
लिंगाध्यक्षः सुराध्यक्षो योगाध्यक्षो युगावहः ॥ ७७ ॥
बीजाध्यक्षो बीजकर्ता अध्यात्मानुगतो बलः।
इतिहासः संकलपश्च गौतमोऽथ निशाकरः ॥ ७८ ॥
दंभो ह्यदंभो वैदंभो वश्यो वशकरः कलिः।
लोककर्ता पशुपतिर्महाकर्ता ह्यनौषधः ॥ ७९ ॥
अक्षरं परमं ब्रह्म बलवच्छक्र एव च।
नीतिर्ह्यनीतिः शुद्धात्मा शुद्धो मान्यो गतागतः ॥ ८० ॥
बहुप्रसादः सुस्वप्नो दर्पणोऽथत्व मित्रजित्।
वेदकारो मंत्रकारो विद्वान् समरमर्दनः ॥ ८१ ॥
महामेघनिवासी च महाघोरो वशीकरः।
अग्निज्वालो महाज्वालो अतिधूम्रो हुतो हविः ॥ ८२ ॥
वृषणः शंकरो नित्यं वर्चस्वी धूम्रकेतनः।
नीलस्तथांगलुब्धश्च शोभनो निरवग्रहः ॥ ८३ ॥
स्वस्तिदः स्वस्तिभावश्च भागी भागकरो लघुः।
उत्संगश्च महांगश्च महागर्भ परायणः ॥ ८४ ॥
कृष्णवर्णः सुवर्णश्च इन्द्रियं सर्वदेहिनाम्।
महापादो महाहस्तो महाकायो महायशाः ॥ ८५ ॥
महामूर्धा महामात्रो महानेत्रो निशालयः।
महांतको महाकर्णो महोष्ठश्च महाहनुः ॥ ८६ ॥
महानासो महाकम्बुर्महाग्रीवः श्मशानभाक्।
महावक्षा महोरस्को ह्यंतरात्मा मृगालयः ॥ ८७ ॥

लंबनो लंबितोष्ठश्च महामायः पयोनिधिः ।
महादन्तो महादंष्ट्रो महाजिह्वो महामुखः ॥ ८८ ॥
महानखो महारोमा महाकेशो महाजटः ।
प्रसन्नश्च प्रसादश्च प्रत्ययो गिरिसाधनः ॥ ८९ ॥
स्नेहनोऽस्नेहनश्चैव अजितश्च महामुनिः ।
वृक्षाकारो वृक्षकेतुरनलो वायुवाहनः ॥ ९० ॥
गंडली मेरुधामाच देवाधिपतिरेवच ।
अथर्वशीर्षः सामास्य ऋक्सहस्रामितेक्षणः ॥ ९१ ॥
यजुःपादभुजो गुह्यः प्रकाशो जंगमस्तथा ।
अमोघार्थः प्रसादश्च अभिगम्यः सुदर्शनः ॥ ९२ ॥
उपकारः प्रियः सर्वः कनकः कांचनच्छविः ।
नाभिर्नंदिकरोभावः पुष्करस्थपतिः स्थिरः ॥ ९३ ॥
द्वादशस्त्रासनश्चाद्यो यज्ञो यज्ञसमाहितः ।
नक्तं कलिश्च कालश्च मकरः कालपूजितः ॥ ९४ ॥
सगणो गणकारश्च भूतवाहनसारथिः ।
भस्मशयोभस्मगोप्ता भस्मभूतस्तरुर्गणः ॥ ९५ ॥
लोकपालस्तथा लोको महात्मा सर्वपूजितः ।
शुक्लस्त्रिशुक्लः संपन्नः शुचिर्भूतनिषेवितः ॥ ९६ ॥
आश्रमस्थः क्रियावस्थो विश्वकर्ममतिर्वरः ।
विशालशाखस्ताम्रोष्ठो ह्यम्बुजालः सुनिश्चलः ॥ ९७ ॥
कपिलः कपिशः शुक्ल आयुश्चैव परोऽपरः ।
गन्धर्वो ह्यदितिस्तार्क्ष्यः सुविज्ञेयः सुशारदः ॥ ९८ ॥
परश्वधायुधोदेव अनुकारी सुबांधवः ।
तुम्बवीणो महाक्रोध ऊर्ध्वरेता जलेशयः ॥ ९९ ॥
उग्रो वंशकरो वंशो वंशनादो ह्यनिन्दितः ।
सर्वाङ्गरूपो मायावी सुहृदो ह्यनिलोऽनलः ॥ १०० ॥
बन्धनो बन्धकर्ता च सुबन्धनविमोचनः ।
सयज्ञारिः सकामारिर्महादंष्ट्रो महायुधः ॥ १०१ ॥
बहुधा निंदितः शर्वः शङ्करः शङ्करोऽधनः ।
अमरेशो महादेवो विश्वदेवः सुरारिहा ॥ १०२ ॥

अहिर्बुध्न्योऽनिलाभश्च चेकितानो हविस्तथा ।
अजैकपाच्च कापाली त्रिशंकुरजितः शिवः ॥ १०३ ॥
धन्वन्तरिर्धूमकेतुः स्कन्दो वैश्रवणस्तथा ।
धाता शक्रश्च विष्णुश्च मित्रस्त्वष्टाध्रुवो धरः ॥ १०४ ॥
प्रभावः सर्वगो वायुरर्यमा सविता रविः ।
उषङ्गुश्च विधाता च मांधाता भूतभावनः ॥ १०५ ॥
विभुर्वर्णविभावी च सर्वकामगुणावहः ।
पद्मनाभो महागर्भश्चन्द्रवक्त्रोऽनिलोऽनलः ॥ १०६ ॥
वलवांश्चोपशान्तश्च पुराणः पुण्यचंचुरी ।
कुरुकर्त्ता कुरुवासी कुरुभूतो गुणौषधः ॥ १०७ ॥
सर्वाशयोदर्भचारी सर्वेषां प्राणिनां पतिः ।
देवदेवः सुखासक्तः सदसत्सर्वरत्नवित् ॥ १०८ ॥
कैलासगिरिवासी च हिमवद्गिरिसंश्रयः ।
कूलहारी कूलकर्त्ता बहुविद्यो बहुप्रदः ॥ १०९ ॥
वणिजो वर्धकी वृक्षो वकुलश्चन्दनच्छदः ।
सारग्रीवोमहाजत्रुरलोलश्च महौषधः ॥ ११० ॥
सिद्धार्थकारी सिद्धार्थच्छन्दो व्याकरणोत्तरः ।
सिंहनादः सिंहदंष्ट्रः सिंहगः सिंहवाहनः ॥ १११ ॥
प्रभावात्मा जगत्कालस्थालो लोकहितस्तरुः ।
सारङ्गो नवचक्रांगः केतुमाली सभावनः ॥ ११२ ॥
भूतालयो भूतपतिरहोमात्रमनिन्दितः ॥ ११३ ॥
वाहिता सर्वभूतानां निलयश्च विभुर्भवः ।
अमोघः संयतो ह्यश्वो भोजनः प्राणधारकः ॥ ११४ ॥
धृतिमान् मतिमान्दक्षः सत्कृतश्च युगाधिपः ।
गोपालिर्गोपतिर्ग्रामो गोचर्मवसनो हरिः ॥ ११५ ॥
हिरण्यबाहुश्च तथा गुहापालः प्रवेशिनाम् ।
प्रकृष्टारिर्महाहर्षो जितकामो जितेन्द्रियः ॥ ११६ ॥
गांधारश्च सुवासश्च तपःसक्तो रतिर्नरः ।
महागीतो महानृत्यो ह्यप्सरोगणसेवितः ॥ ११७ ॥

महाकेतुर्महाधातुर्नैकसानुचरश्चलः ।
आवेदनीय आदेशः सर्वगन्धसुखावहः ॥ ११८ ॥
तोरणस्तारणो वातः परिधी पतिखेचरः ।
संयोगो वर्धनो वृद्धो अतिवृद्धोगुणाधिकः ॥ ११९ ॥
नित्यआत्मा सहायश्च देवासुरपतिः पतिः ।
युक्तश्च युक्तबाहुश्च देवो दिवि सुपर्वणः ॥ १२० ॥
आषाढश्च सुषाढश्च ध्रुवोऽथ हरिणो हरः ।
वपुरावर्तमानेभ्यो वसुश्रेष्ठो महापथः ॥ १२१ ॥
शिरोहारी विमर्शश्च सर्वलक्षणलक्षितः ।
अक्षश्च रथयोगी च सर्वयोगी महाबलः ॥ १२२ ॥
समाम्नायोऽसमाम्नायस्तीर्थदेवो महारथः ।
निर्जीवो जीवनो मन्त्रः शुभाक्षो बहुकर्कशः ॥ १२३ ॥
रत्नप्रभूतो रत्नांगो महार्णव निपानवित् ।
मूलं विशालो ह्यमृतो व्यक्ताव्यक्तस्तपोनिधिः ॥ १२४ ॥
आरोहणोऽधिरोहश्च शीलधारी महायशाः ।
सेनाकल्पो महाकल्पो योगो युगकरो हरिः ॥ १२५ ॥
युगरूपो महारूपो महानागहनो वधः ।
न्यायनिर्वपणः पादः पण्डितो ह्यचलोपमः ॥ १२६ ॥
बहुमालो महामालः शशी हरसुलोचनः ।
विस्तारो लवणः कूपस्त्रियुगः सफलोदयः ॥ १२७ ॥
त्रिलोचनो विषण्णांगो मणिविद्धो जटाधरः ।
बिन्दुर्विसर्गः सुमुखः शरः सर्वायुधः सहः ॥ १२८ ॥
निवेदनः सुखाजातः सुगन्धारो महाधनुः ।
गंधपाली च भगवानुत्थानः सर्वकर्मणाम् ॥ १२९ ॥
मन्थानो बहुलो वायुः सकलः सर्वलोचनः ।
तलस्तालः करस्थाली ऊर्ध्वसंहननो महान् ॥ १३० ॥
छत्रं सुच्छत्रो विख्यातो लोकः सर्वाश्रयः क्रमः ।
मुण्डो विरूपो विकृतो दंडी कुंडी विकुर्वणः ॥ १३१ ॥
हर्यक्षः ककुभो वज्री शतजिह्वः सहस्रपात् ।
सहस्रमूर्धा देवेन्द्रः सर्वदेवमयो गुरुः ॥ १३२ ॥

सहस्रबाहुः सर्वांगः शरण्यः सर्वलोककृत् ।
पवित्रं त्रिककुन्मंत्रः कनिष्ठः कृष्णपिंगलः ॥ १३३ ॥
ब्रह्मदण्डविनिर्माता शतघ्नोपाश शक्तिमान् ।
पद्मगर्भो महागर्भो ब्रह्मगर्भो जलोद्भवः ॥ १३४ ॥
गभस्तिर्ब्रह्मकृद् ब्रह्मी ब्रह्मविद्ब्राह्मणो गतिः ।
अनन्तरूपो नैकात्मा तिग्मतेजाः स्वयंभुवः ॥ १३५ ॥
ऊर्ध्वगात्मा पशुपतिर्वातरंहा मनोजवः ।
चन्दनी पद्मनालाग्रः सुरभ्युत्तरणो नरः ॥ १३६ ॥
कर्णिकारमहास्रग्वी नीलमौलिः पिनाकधृत् ।
उमापतिरुमाकांतो जाह्नवीधृदुमाधवः ॥ १३७ ॥
वरो वराहो वरदो वरेण्यः सुमहास्वनः ।
महाप्रसादो दमनः शत्रुहा श्वेतपिंगलः ॥ १३८ ॥
पीतात्मा परमात्मा च प्रयतात्मा प्रधानधृत् ।
सर्वपार्श्वमुखस्त्र्यक्षो धर्मसाधारणो वरः ॥ १३९ ॥
चराचरात्मा सूक्ष्मात्मा अमृतो गोवृषेश्वरः ।
साध्यर्षिर्वसुरादित्यो विवस्वान्सविताऽमृतः ॥ १४० ॥
व्यासः सर्गः सुसंक्षेपो विस्तरः पर्ययो नरः ।
ऋतुः संवत्सरो मासः पक्षः संख्यासमापनः ॥ १४१ ॥
कलाः काष्ठा लवा मात्रा मुहूर्ताहः क्षपाः क्षणाः ।
विश्वक्षेत्रं प्रजा बीजं लिंगमाद्यस्तु निर्गमः ॥ १४२ ॥
सदसद्व्यक्तमव्यक्तं पितामाता पितामहः ।
स्वर्गद्वारं प्रजाद्वारं मोक्षद्वारं त्रिविष्टपम् ॥ १४३ ॥
निर्वाणं ह्लादनश्चैव ब्रह्मलोकः परा गतिः ।
देवासुरविनिर्माता देवासुरपरायणः ॥ १४४ ॥
देवासुरगुरुर्देवो देवासुर नमस्कृतः ।
देवासुरमहामात्रो देवासुरगणाश्रयः ॥ १४५ ॥
देवासुरगणाध्यक्षो देवासुरगणाग्रणीः ।
देवातिदेवो देवर्षिर्देवासुरवरप्रदः ॥ १४६ ॥
देवासुरेश्वरो विश्वो देवासुरमहेश्वरः ।
सर्वदेवमयोऽचिन्त्यो देवतात्माऽऽत्मसंभवः ॥ १४७ ॥

उद्भिन्त्रिविक्रमो वैद्यो विरजो नीरजोऽमरः ।
ईड्यो हस्तीश्वरो व्याघ्रो देवसिंहो नरर्षभः ॥ १४८ ॥
विबुधोऽग्रवरः सूक्ष्मः सर्वदेवस्तपोमयः ।
सुयुक्तः शोभनो वज्री प्रासानां प्रभवोऽव्ययः ॥ १४९ ॥
गुहः कान्तो निजः सर्गः पवित्रं सर्वपावनः ।
शृंगी शृंगप्रियो बभ्रू राजराजो निरामयः ॥ १५० ॥
अभिरामः सुरगणो विरामः सर्वसाधनः ।
ललाटाक्षो विश्वदेवो हरिणो ब्रह्मवर्चसः ॥ १५१ ॥
स्थावराणां पतिश्चैव नियमेन्द्रियवर्धनः ।
सिद्धार्थः सिद्धभूतार्थोऽचिंत्यः सत्यव्रतः शुचिः ॥ १५२ ॥
व्रताधिपः परंब्रह्म भक्तानां परमा गतिः ।
विमुक्तो मुक्ततेजाश्च श्रीमान् श्रीवर्धनो जगत् ॥ १५३ ॥
यथा प्रधानं भगवानिति भक्त्या स्तुतो मया ।
यन्न ब्रह्मादयो देवा विदुस्तत्त्वेन नर्षयः ॥ १५४ ॥
स्तोतव्यमर्च्यं वन्द्यं च कः स्तोष्यति जगत्पतिम् ।
भक्त्या त्वेवं पुरस्कृत्य मयायज्ञपतिर्विभुः ॥ १५५ ॥
ततोऽभ्यनुज्ञां संप्राप्य स्तुतो मतिमतां वरः ।
शिवमेभिः स्तुवंदेवं नामभिः पुष्टिवर्धनैः ॥ १५६ ॥
नित्ययुक्तः शुचिर्भक्तः प्राप्नोत्यात्मानमात्मना ॥ १५७ ॥

हे वासुदेव इस प्रकार बहुत नामों में से मुख्य नामों के द्वारा मैंने भगवान् की स्तुति की थी । जिनको ब्रह्मादि देव तथा ऋषि वास्तविक रूप से नहीं जान सकते ।

स्तुत्यर्ह, पूजनीय, और नमस्करणीय उस जगदीश्वर की स्तुति कौन कर सकता है । इस प्रकार यज्ञपति उस विभु परमात्मा को मैंने भक्ति के आगे करके आज्ञा पाकर बुद्धिमानों में श्रेष्ठ उस भगवान् की स्तुति की । सावधान एवं पवित्रता तथा भक्ति से युक्त जो मनुष्य आयुरारोग्यादि रूप पुष्टि को देनेवाले इन सहस्र नामों से भगवान् शंकर की स्तुति करता है वह अपनी बुद्धि से आत्माको प्राप्त करता है । १५७ ।

एतद्धि परमं ब्रह्म परं ब्रह्माधिगच्छति ।
ऋषयश्चैव देवाश्च स्तुवन्त्येतेन तत्परम् ॥ १५८ ॥
स्तूयमानो महादेवस्तुष्यते नियतात्मभिः ।
भक्तानुकंपी भगवानात्मसंस्थाकरो विभुः ॥ १५९ ॥
तथैवच मनुष्येषु ये मनुष्याः प्रधानतः ।
आस्तिकाः श्रद्धधानाश्च बहुभिर्जन्मभिः स्तवैः ॥ १६० ॥
भक्त्या ह्यनन्यमीशानं परं देवं सनातनम् ।
कर्मणा मनसा वाचा भावेनामिततेजसः ॥ १६१ ॥
शयाना जाग्रमाणाश्च व्रजन्नुपविशंस्तथा ।
उन्मिषन्निमिषंश्चैव चिन्तयन्तः पुनःपुनः ॥ १६२ ॥
शृण्वन्तः श्रावयंतश्च कथयंतश्च ते भवम् ।
स्तुवंतः स्तूयमानाश्च तुष्यंति च रमंति च ॥ १६३ ॥
जन्मकोटिसहस्रेषु नानासंसारयोनिषु ।
जंतोर्विगत पापस्य भवे भक्तिः प्रजायते ॥ १६४ ॥

यह ब्रह्मप्राप्ति की सर्वोत्तम विद्या है; इसको जपता हुआ मनुष्य परब्रह्म को प्राप्त करता है; इसी से ऋषि तथा देवतालोग उस परब्रह्म की स्तुति करते हैं ॥ १५८ ॥

स्थिर बुद्धिवाले देवता और ऋषियों से स्तुति किये गए भक्तानुकम्पी, मोक्षद और व्यापक शंकर भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं।

इसी प्रकार विशेष करके मनुष्यों में जो श्रेष्ठ श्रद्धालु और आस्तिक मनुष्य बहुत जन्मों तक अनन्य भक्ति से इन स्तोत्रों द्वारा, मन वचन और कर्म एवं सोते, जागते, चलते, फिरते, बैठते, पलक मारते या पलक खोलते प्रत्येक समय, अमित तेजस्वी सनातन उस परमेश्वर की स्तुति करते हैं; बार बार उसका चिन्तन करते हैं एवं उस परमेश्वर की कथा को सुनते और सुनाते रहते हैं; इस प्रकार स्तुति करने वाले वे लोग संसार की अनेक योनिमें करोड़ों जन्म पर्यन्त प्रसन्न और आनन्द करते रहते हैं एवं संसार उनकी स्तुति करता रहता है करोड़ों जन्म जन्मान्तर के बाद निष्पाप प्राणी के हृदय में पुण्यवशात्, भगवान् की भक्ति पैदा होती है।

उत्पन्ना च भवेद्भक्तिरनन्या सर्वभावतः ।
भाविनः कारणे चास्य सर्वयुक्तस्य सर्वथा ॥ १६५ ॥
एतद्देवेषु दुष्प्रापं मनुष्येषु न लभ्यते ।
निर्विघ्ना निर्मला रुद्रे भक्तिरव्यभिचारिणी ॥ १६६ ॥
तस्यैव च प्रसादेन भक्तिरुत्पद्यते नृणाम् ।
येन यांति परां सिद्धिं तद्भागवत चेतसः ॥ १६७ ॥
ये सर्वभावानुगताः प्रपद्यन्ते महेश्वरम् ।
प्रपन्नवत्सलो देवः संसारात्तान् समुद्धरेत् ॥ १६८ ॥
एवमन्ये विकुर्वन्ति देवाः संसारमोचनम् ।
मनुष्याणामृते देवं नान्या शक्तिस्तपोवलम् ॥ १६९ ॥
इतितेनेंद्रकल्पेन भगवान्सदसत्पतिः ।
कृत्तिवासाः स्तुतः कृष्ण तंडिना शुभबुद्धिना ॥ १७० ॥

श्रद्धादि सबभावों सेही मैं शिव हूं इस प्रकार की अभेदरूप अनन्य भगवद्भक्ति उत्पन्न होती है, किन्तु सर्वसाधान सम्पन्न भेद दृष्टिवाले मनुष्य में हर तरह भाग्य सेही शिव में भक्ति होती है। नामों में प्रधान ब्रह्मविद्यारूप यह सहस्रनाम देवताओं में भी दुष्प्राप्य है, मनुष्यों में तो मिल नहीं सकता है। विघ्न बाधा रहित अव्यभिचरित और निर्मल रुद्रभक्ति मनुष्यों में उस देव की ही प्रसन्नता से हो सकती है। जिसे भगवान् के ऊपर चित्त लगानेवाला मनुष्य मोक्षरूप परम गति को पहुँच जाता है ॥ १६७ ॥

जो मनुष्य श्रद्धाभक्ति प्रभृति भावों का अनुयायी होकर महेश्वर की शरण में जाते हैं उन्हें शरणागत प्रेमी भवानीपति भगवान् इस संसार से तार देते हैं।

इस प्रकार संसार से सम्बन्ध छुड़ाने वाले महादेव को छोड़कर और सभी देवता लोग भगवत् प्रेमी मनुष्यों के तपोमार्ग में बाधा किया करते हैं, क्योंकि उन देवताओं में और कोई शक्ति नहीं रहती है ॥ १६९ ॥

इसी कारण इन्द्र के तुल्य तथा सुन्दर बुद्धिवाले उस तंडिमुनि ने हव्याहव्य पदार्थों के प्रभु, तथा चर्मधारी भगवान् महादेव की स्तुति की। ब्रह्माजी ने इस स्तुति का धारण भगवान् महादेव से किया।

स्तवमेतं भगवतो ब्रह्मा स्वयमधारयत् ।
गीयते च स बुद्धयेत ब्रह्माशंकरसंनिधौ ॥ १७१ ॥
इदं पुण्यं पवित्रं च सर्वदा पापनाशनम् ।
योगदं मोक्षदं चैव स्वर्गदं तोषदं तथा ॥ १७२ ॥
एवमेतत्पठंते य एकभक्त्या तु शंकरम् ।
या गतिः सांख्ययोगानां व्रजन्त्येतां गतिं तदा ॥ १७३ ॥
स्तवमेनं प्रयत्नेन सदा रुद्रस्य सन्निधौ ।
अब्दमेकं चरेद्भक्तः प्राप्नुयादीप्सितं फलम् ॥ १७४ ॥
एतद्रहस्यं परमं ब्रह्मणो हृदि संस्थितम् ।
ब्रह्मा प्रोवाच शक्राय शक्रः प्रोवाच मृत्यवे ॥ १७५ ॥
मृत्युः प्रोवाच रुद्रेभ्यो रुद्रेभ्यस्तंडिमागमत् ।
महता तपसा प्राप्तस्तंडिना ब्रह्मसद्मनि ॥ १७६ ॥
तंडिः प्रोवाच शुक्राय गौतमाय च भार्गवः ।
वैवस्वताय मनवे गौतमः प्राह माधव ॥ १७७ ॥
नारायणाय साध्याय समाधिष्ठाय धीमते ।
यमाय प्राह भगवान् साध्यो नारायणोऽच्युतः ॥ १७८ ॥

अतः यह स्तोत्र ब्रह्मा से शंकर के समीप गाया जाता है इसलिये ब्राह्मण इस स्तोत्र को जाने ।

यह शिवसहस्र स्तोत्र पुण्य है, पवित्र है और सदा पापविनाशक है; एवं योग, मोक्ष, स्वर्ग तथा सन्तोष को देने वाला है । इस प्रकार समझ कर अद्वितीय भक्ति के साथ जो मनुष्य कल्याणकारी इस पवित्र स्तोत्र को पढ़ते हैं, वे उस गति को जाते हैं जहां कि सांख्य (ज्ञान) और योगमार्ग वाले पहुंचते हैं । जो शिव भक्त सावधान होकर शिवजी के पास एक सालतक इस स्तोत्र को पढ़ता है उसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है । यह स्तोत्ररूप गूढ़रहस्य पहले ब्रह्माजी के हृदय में था, उन्हों ने इसका उपदेश इन्द्र को दिया इन्द्र ने यमराज को दिया । यमराज ने रुद्रों से कहा और रुद्रों के द्वारा तंडिमुनि को मिला । इस प्रकार तंडिमुनि ने बड़ी तपस्या के साथ ब्रह्माजी की सभा में इस स्तोत्र को पाया । तंडिपरम्परा के अनुसार सहस्रनामात्मक ब्रह्मविद्यारूप यह स्तोत्र

नाचिकेताय भगवानाह वैवस्वतो यमः ।
मार्कंडेयाय वार्ष्णेय नाचिकेतोऽभ्यभाषत ॥ १७९ ॥
मार्कंडेयान्मया प्राप्तो नियमेन जनार्दन ।
तवाप्यहममित्रघ्न स्तवं दद्यां ह्यविश्रुतम् ॥ १८० ॥
स्वर्ग्यमारोग्यमायुष्यं धन्यं वेदेन संमितम् ।
नास्य विघ्नं विकुर्वंति दानवा यक्षराक्षसाः ॥ १८१ ॥
पिशाचा यातुधाना वा गुह्यका भुजगा अपि ।
यः पठेत शुचिः पार्थ ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ।
अभग्न योगो वर्षं तु सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥ १८२ ॥

शुक्र, गौतम और वैवस्वत मनु को मिला । एवं अच्युत भगवान् ने समाधिस्थ नारायणरूप यम को दिया । यमने अपने शिष्य नचिकेता को दिया । नचिकेताने मार्कण्डेय मुनि को दिया । हे जनार्दन मार्कण्डेय से मैंने प्राप्त किया है ।

हे शत्रुघ्न भगवन् ! वेदसम्मत अश्रुत पूर्व, स्वर्ग आयुरारोग्यकारी तथा धन देने वाले इस स्तोत्र को मैं तुम्हें देता हूं । जो इसे पा जाता है, उसे यक्ष राक्षस पिशाच सर्प और यातुधान प्रभृति स्वल्पयोनियां कुछ भी विघ्नबाधा नहीं पहुंचा सकती हैं ।

इस प्रकार जो पवित्र जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी एक साल पर्यन्त इस स्तोत्र का पाठ करता है वह अखण्डित योगी अश्वमेध के फलको पाता है ॥१८२॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि आनुशासनिकेप० दानधर्मे महादेवसहस्रनामस्तोत्रे सप्तदशोऽध्यायः ।

अष्टादशोऽध्यायः ।

वैशम्पायन उवाच ।

महायोगी ततः प्राह कृष्णद्वैपायनो मुनिः ।
पठस्व पुत्र भद्रं ते प्रीयतां ते महेश्वरः ॥ १ ॥

पुरा पुत्र मया मेरौ, तप्यता परमं तपः ।
पुत्रहेतोर्महाराज स्तव एषोऽनुकीर्तितः ॥ २ ॥

लब्धवानीप्सितान्कामानहं वै पाण्डुनन्दन ।
तथा त्वमपि शर्वाद्धि सर्वान्कामानवाप्स्यसि ॥ ३ ॥

कपिलश्च ततः प्राह सांख्यर्षिर्देव संमतः ।
मयाजन्मान्यनेकानि भक्त्या चाराधितो भवः ॥ ४ ॥

प्रीतश्च भगवान् ज्ञानं ददौ मम भवान्तकम् ।
चारु शीर्षस्ततः प्राह शक्रस्य दयितः सखा ॥ ५ ॥

आलंबायन इत्येवं विश्रुतः करुणात्मकः ।
मया गोकर्णमासाद्य तपस्तप्त्वा शतं समाः ॥ ६ ॥

वैशम्पायन बोले कि इसके अनन्तर महायोगी व्यास मुनि ने कहा कि हे पुत्र युधिष्ठिर तेरा कल्याण हो तू स्तोत्र का पाठ कर तेरे ऊपर महादेवजी प्रसन्न होंगे। पूर्व काल में मेरुपर्वत पर पुत्र की कामना से कठिन तपस्या करके मैंने भी इसी स्तोत्र का पाठ किया था। हे पाण्डुनन्दन! इसी के प्रताप से मैंने वांछित फल को पाया और इसी प्रकार तुम भी शिवजी से सब मनोरथों को पावोगे। तदनन्तर सांख्यशास्त्र के बनाने वाले देवताओं के मान्य कपिलऋषि ने कहा कि मैंने अनेक जन्मों तक उस सबके उत्पत्तिस्थान परमेश्वर का बड़ी भक्ति पूर्वक पूजनादि किया। तब प्रसन्न होकर भगवान ने मुझको संसार के बंधनों को नष्ट करने वाला ज्ञान दिया। इसके बाद इन्द्र के प्यारे मित्र आलम्ब गोत्री महादयावान् चारुशीर्ष ने कहा हे राजन् मैंने भी गोकर्ण तीर्थ में सौ वर्ष तक शिवजी की तपस्या करके अयोनिज (जो योनि से न उत्पन्न

अयोनिजानां दन्तानां धर्मज्ञानां सुवर्चसाम् ।
अजराणामदुःखानां शतवर्ष सहस्रिणाम् ॥ ७ ॥

हुए हों) धर्मज्ञ, महातेजस्वी, जरा रहित, दुःख से विहीन, और एक लाख वर्ष की अवस्था वाले सौ पुत्रों को प्राप्त किया था ।

वाल्मीकिश्चाह भगवान्युधिष्ठिरमिदं वचः ।
विवादे साग्निमुनिभिर्ब्रह्मघ्नो वै भवानिति ॥ ८ ॥
उक्तः क्षणेन चाविष्टस्तेनाधर्मेण भारत ।
सोहमीशानमनघममोघं शरणं गतः ॥ ९ ॥
मुक्तश्चास्मि ततः पापैस्ततो दुःखविनाशनः ।
आह मां त्रिपुरघ्नो वै यशस्तेऽग्रयं भविष्यति ॥ १० ॥
जामदग्न्यश्च कौन्तेयमिदं धर्मभृतांवरः ।
ऋषिमध्ये स्थितः प्राह ज्वलन्निव दिवाकरः ॥ ११ ॥
पितृविप्रवधेनाहमार्तो वै पांडवाग्रज ।
शुचिर्भूत्वा महादेवं गतोस्मि शरणं नृप ॥ १२ ॥
नामभिश्चास्तुवं देवं ततस्तुष्टोऽभवद्भवः ।
परशुं च ततो देवो दिव्यान्यस्त्राणि चैव मे ॥ १३ ॥
पापं च तेन भविता अजेयश्च भविष्यसि ।
न ते प्रभविता मृत्युरजरश्च भविष्यसि ॥ १४ ॥
आह मां भगवानेवं शिखंडी शिवविग्रहः ।
तदवाप्तं च मे सर्वं प्रसादात्तस्य धीमतः ॥ १५ ॥
विश्वामित्रस्तदोवाच क्षत्रियोऽहं तदाभवम् ।
ब्राह्मणोऽहं भवानीति मया चाराधितो भवः ॥ १६ ॥
तत्प्रसादान्मया प्राप्तं ब्राह्मण्यं दुर्लभं महत् ।
असितो देवलश्चैव प्राह पांडुसुतं नृपम् ॥ १७ ॥
शापाच्छक्रस्य कौन्तेय विभोधर्मोऽनशत्तदा ।
तन्मे धर्मं यशश्चाग्र्यमायुश्चैवाददत्प्रभुः ॥ १८ ॥
ऋषिर्गृत्समदोनाम शक्रस्य दयितः सखा ।
प्राहाजमीढं भगवान् बृहस्पतिसमद्युतिः ॥ १९ ॥

वरिष्ठो नाम भगवांश्चाक्षुषस्य मनोः सुतः ।
शतक्रतोरचिन्त्यस्य सत्रे वर्षसहस्रिके ॥ २० ॥
वर्तमानेऽब्रवीद्वाक्यं साम्नि ह्युच्चारिते मया ।
रथंतरे द्विजश्रेष्ठ न सम्यगितिवर्तते ॥ २१ ॥
समीक्षस्व पुनर्बुद्ध्या पापं त्यक्त्वा द्विजोत्तम ।
अयज्ञवाहिनं पापमकार्षीस्त्वं सुदुर्मते ॥ २२ ॥
एवमुक्त्वा महाक्रोधः प्राह शंभुं पुनर्वचः ।
प्रज्ञया रहितो दुःखी नित्यभीतो वनेचरः ॥ २३ ॥
दशवर्षसहस्राणि दशाष्टौ च शतानि च ।
नष्टपानीयपवने मृगैरन्यैश्च वर्जिते ॥ २४ ॥
अयज्ञीयद्रुमे देशे रुरुसिंह निषेविते ।
भविता त्वं मृगः क्रूरो महादुःखसमन्वितः ॥ २५ ॥
तस्य वाक्यस्य निधने पार्थ जातो ह्यहं मृगः ।
ततो मां शरणं प्राप्तं प्राह योगी महेश्वरः ॥ २६ ॥
अजरश्चामरश्चैव भविता दुःखवर्जितः ।
साम्यं ममास्तु ते सौख्यं युवयोर्वर्धतां क्रतुः ॥ २७ ॥
अनुग्रहानेवमेष करोति भगवान् विभुः ।
परं धाता विधाता च सुखदुःखे च सर्वदा ॥ २८ ॥
अचिन्त्य एष भगवान्कर्मणा मनसा गिरा ।
न मे तात युधि श्रेष्ठ विद्यया पंडितः समः ॥ २९ ॥
वासुदेवस्तदोवाच पुनर्मतिमतां वरः ।
सुवर्णाक्षो महादेवस्तपसा तोषितो मया ॥ ३० ॥
ततोऽथ भगवानाह प्रीतो मां वै युधिष्ठिर ।
अर्थात्प्रियतरः कृष्ण मत्प्रसादाद्भविष्यसि ॥ ३१ ॥
अपराजितश्च युद्धेषु तेजश्चैवानलोपमम् ।
एवं सहस्रशश्चान्यान्महादेवो वरं ददौ ॥ ३२ ॥
मणिमन्थेऽथ शैले वै पुरा संपूजितो मया ।
वर्षायुतसहस्राणां सहस्रं शतमेव च ॥ ३३ ॥
ततो मां भगवान्प्रीत इदं वचनमब्रवीत् ।
वरं वृणीष्व भद्रं ते यस्ते मनसि वर्तते ॥ ३४ ॥

ततः प्रणम्य शिरसा इदं वचनमब्रवम् ।
यदि प्रीतो महादेवो भक्त्या परमया प्रभुः ॥ ३५ ॥
नित्यकालं तवेशान भक्तिर्भवतु मे स्थिरा ।
एवमस्त्विति भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ३६ ॥

जैगीषव्य उवाच—
ममाष्टगुणमैश्वर्यं दत्तं भगवता पुरा ।
यत्नेनान्येन बलिना वाराणस्यां युधिष्ठिर ॥ ३७ ॥

गर्ग उवाच—
चतुःषष्ट्यंगमदद्त्कलाज्ञानं ममाद्भुतम् ।
सरस्वत्यास्तटे तुष्टो मनोयज्ञेन पांडव ॥ ३८ ॥
तुल्यं मम सहस्रं तु सुतानां ब्रह्मवादिनाम् ।
आयुश्चैव सपुत्रस्य संवत्सरशतायुतम् ॥ ३९ ॥

पराशर उवाच—
प्रसाद्येह पुरा सर्वं मनसा चिन्तयन्नृप ।
महातपा महातेजा, महायोगी महायशाः ॥ ४० ॥
वेदव्यासः श्रियावासो ब्रह्मण्यः करुणान्वितः ।
अप्यसावीप्सितः पुत्रो मम स्याद्वै महेश्वरात् ॥ ४१ ॥
इति मत्वा हृदि मतं प्राह मां सुरसत्तमः ।
मयि संभावना यास्याःफलात्कृष्णो भविष्यति ॥ ४२ ॥
सावर्णस्य मनोः सर्गे सप्तर्षिश्च भविष्यति ।
वेदानां च स वै वक्ता कुरुवंशकरस्तथा ॥ ४३ ॥
इतिहासस्य कर्ता च पुत्रस्ते जगतो हितः ।
भविष्यति महेन्द्रस्य दयितः स महामुनिः ॥ ४४ ॥
अजरश्चामरश्चैव पराशर सुतस्तव ।
एवमुक्त्वा स भगवांस्तत्रवान्तरधीयत ॥ ४५ ॥
युधिष्ठिर महायोगी वीर्यवानक्षयोऽव्ययः ।

मांडव्यउवाच—
अचौरश्चौर शंकायां शूले भिन्नो ह्यहं तदा ॥ ४६ ॥

तत्रस्थेन स्तुतो देवः प्राह मां वै नरेश्वर ।
मोक्षं प्राप्स्यसि शूलाच्च जीविष्यसि समार्बुदम् ॥ ४७ ॥
रुजा शूलकृता चैव न ते विप्र भविष्यति ।
आधिभिर्व्याधिभिश्चैव वर्जितस्त्वं भविष्यसि ॥ ४८ ॥
पादाच्चतुर्थात्संभूत आत्मा यस्मान् मुने तव ।
त्वं भविष्यस्यनुपमो जन्म वै सफलं कुरु ॥ ४९ ॥
तीर्थाभिषेकं सकलं त्वमविघ्नेन चाप्स्यसि ।
स्वर्गं चैवाक्षयं विप्र विदधामि तवोर्जितम् ॥ ५० ॥
एवमुक्त्वा तु भगवान् वरेण्यो वृषवाहनः ।
महेश्वरो महाराज कृत्तिवासा महाद्युतिः ॥ ५१ ॥
सगणो दैवतश्रेष्ठस्तत्रैवान्तरधीयत ।

गालवउवाच—

विश्वामित्राभ्यनुज्ञातो ह्यहं पितरमागतः ॥ ५२ ॥
अब्रवीन्मां ततो माता दुःखिता रुदती भृशम् ।
कौशिकेनाभ्यनुज्ञातं पुत्रं वेदविभूषितम् ॥ ५३ ॥
न तात तरुणं दांतं पिता त्वां पश्यतेऽनघ ।
श्रुत्वा जनन्या वचनं निराशो गुरुदर्शने ॥ ५४ ॥
नियतात्मा महादेवमपश्यं सोऽब्रवीच्चमाम् ।
पिता माता च ते त्वं च पुत्र मृत्युविवर्जिताः ॥ ५५ ॥
भविष्यथ विश क्षिप्रं द्रष्टासि पितरं क्षये ।
अनुज्ञातो भगवता गृहं गत्वा युधिष्ठिर ॥ ५६ ॥
अपश्यं पितरं तात इष्टिं कृत्वा विनिः स्मृतम् ।
उपस्पृश्य गृहीत्वेध्मं कुशांश्च शरणाकुरून् ॥ ५७ ॥
तान्विसृज्य च मां प्राह पिता सास्राविलेक्षणः ।
प्रणमंतं परिष्वज्य मूर्ध्न्युपाघ्राय पांडव ॥ ५८ ॥
दिष्ट्या दृष्टोऽसि मे पुत्र कृतविद्य इहागतः ।

वैशम्पायन उवाच—

एतान्यत्यद्भुतान्येव कर्माण्यथ महात्मनः ॥ ५९ ॥

प्रोक्तानि मुनिभिः श्रुत्वा विस्मयामास पांडवः ।
ततः कृष्णोऽब्रवोद्वाक्यं पुनर्मतिमतांवरः ॥ ६० ॥
युधिष्ठिरं धर्मनिधिं पुरुहूतमिवेश्वरः ।

वासुदेव उवाच—

उपमन्युर्मयि प्राह तपन्निव दिवाकरः ॥ ६१ ॥
अशुभैः पापकर्माणो ये नराः कलुषीकृता ।
ईशानं न प्रपद्यन्ते तमोराजसवृत्तयः ॥ ६२ ॥
ईश्वरं संप्रपद्यन्ते द्विजाभावितभावनाः ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि यो भक्तः परमेश्वरे ॥ ६३ ॥
सदृशोऽरण्यवासीनां मुनीनां भावितात्मनाम् ।
ब्रह्मत्वं केशवत्वं वा शक्रत्वं वा सुरैः सह ॥ ६४ ॥
त्रैलोक्यस्याधिपत्यं वा तुष्टो रुद्रः प्रयच्छति ।
मनसापि शिवं तात ये प्रपद्यंति मानवाः ॥ ६५ ॥
विधूय सर्वपापानि देवैः सह वसंति ते ।
सवलक्षणहीनोपि युक्तो वा सर्वपातकैः ॥ ६६ ॥
सर्वं नुदति तत्पापं भावयञ्छिवमात्मना ।
कीटपक्षिपतंगानां तिरश्चामपि केशव ॥ ६७ ॥
महादेवप्रपन्नानां न भयं विद्यते क्वचित् ।
एवमेव महादेवं भक्ता ये मानवा भुवि ॥ ६८ ॥
न ते संसार वशगा इति मे निश्चिता मतिः ।
ततः कृणोऽब्रवीद्वाक्यं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ ६९ ॥

विष्णुरुवाच—

आदित्यचन्द्रावनिलानलौ च
द्यौर्भूमिरापो वसवोऽथ विश्वे ।
धातार्यमा शुक्रबृहस्पती च
रुद्राःससाध्या वरुणोऽथ गोपः ॥ ७० ॥
ब्रह्मा शक्रो मारुतो ब्रह्म सत्यं
वेदा यज्ञा दक्षिणा वेदवाहाः ।

सोमो यष्टा यच्च हव्यं हविश्च,
रक्षादीक्षा संयमा ये च केचित् ॥ ७१ ॥
स्वाहा वौषट् ब्राह्मणाः सौरभेयी,
धर्मं चाग्र्यं कालचक्रं बलं च ।
यशो दमो बुद्धिमतां स्थितिश्च
शुभाशुभं ये मुनयश्च सप्त ॥ ७२ ॥
आग्र्याबुद्धिर्मनसा दर्शने च
स्पर्शश्चाग्र्यः कर्मणां या च सिद्धिः ।
गणादेवानामूष्मपाः सोमपाश्च
लेखाः सुयामास्तुषिता ब्रह्मकायाः ॥ ७३ ॥
आभा सुरा गन्धपा दृष्टिपाश्च
वाचाविरुद्धाश्च मनोविरुद्धाः ।
शुद्धाश्च निर्माणरताश्च देवाः
स्पर्शासना दर्शपा आज्यपाश्च ॥ ७४ ॥
चिन्त्यद्योता ये च देवेषु मुख्या
ये चाप्यन्ये देवताश्चाजमीढ ।
सुपर्ण गन्धर्व पिशाचदानवा
यक्षास्तथा चारणपन्नगाश्च ॥ ७५ ॥
स्थूलं सुसूक्ष्मं मृदु चाप्यसूक्ष्मं
दुःखं सुखं दुःखमनन्तरं च ।
सांख्यं योगं तत्पराणां परं च
शर्वाज्जातं विद्धि यत्कीर्तितं मे ॥ ७६ ॥
तत्संभूता भूतकृतो वरेण्याः
सर्वे देवा भुवनस्यास्य गोपाः ।
आविश्येमां धरणीं येऽभ्यरक्ष-
न्पुरातनीं तस्य देवस्य सृष्टिम् ॥ ७७ ॥
विचिन्वन्तस्तपसा तत्स्थवीयः
किंचित्तत्वं प्राणहेतोर्नतोऽस्मि ।
ददातु देवः स वरानिहेष्टा-
नभिष्टुतो नः प्रभु रव्ययः सदा ॥ ७८ ॥

इमं स्तवं सन्नियतेन्द्रियश्च
भूत्वा शुचिर्यः पुरुषः पठेत ।
अभग्नयोगो नियतो मासमेकं ।
संप्राप्नुयादश्वमेधे फलं यत् ॥ ७६ ॥
वेदान् कृत्स्नान् ब्राह्मणः प्राप्नुयात्तु,
जयेन्नृपः पार्थमहीं च कृत्स्नाम् ।
वैश्यो लाभं प्राप्नुयान्नैपुणं च
शूद्रो गतिं प्रेत्य तथा सुखं च ॥ ८० ॥
स्तवराजमिमं कृत्वा रुद्राय दधिरे मनः ।
सर्वदोषापहं पुण्यं पवित्रं च यशस्विनः ॥ ८१ ॥
यावंत्यस्य शरीरे तु रोमकूपानि भारत ।
तावंत्यब्दसहस्राणि स्वर्गे वसति मानवः ॥ ८२ ॥

इत्यनुशासनपर्वणि आनुशासनिकपर्वणि मेघवाहनोपाख्याने
अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥